मेरी विशेषता

महाव्रत सम्वत् १९५८ वि० की महा सभा में
परम पूजनीय भगवान् देवात्मा के उपदेश का सार

H
294.572 D 49 M

H
294.572
D 49 M

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

मेरी विशेषता

अर्थात्

महाव्रत सं० १६५८ वि० को महासभा में

परम पूजनीय भगवान् देवात्मा के उपदेश का सार

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 103986
DATE 21-1-02
SHIMLA

Library IIAS, Shimla
H 294.572 D 49 M
00103986

प्रकाशक के दो शब्द

"मेरी विशेषता" एक ऐतिहासिक लेखमाला है जो हिन्दी मासिक पत्र "जीवन पथ" में माघ १९५८ वि० और बैसाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण १९५९ वि० के अंकों में प्रकाशित हुई थी। ये लेख परम् पूजनीय भगवान् देवात्मा के अपने ५१वें जन्म-महोत्सव (१९०१ ई०) की महासभा में दिए गए उपदेश का सार थे। पहला लेख माघ १९५८ वि० के अंक में "महाव्रत १९५८ को महासभा में श्री देवगुरु जी के उपदेश का सार" के शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। अन्य चारों लेखों का शीर्षक "मेरी विशेषता" था।

तब से सब पीढ़ियों में ये लेख बहुत सम्मान और श्रद्धा से पाठ किए जाते रहे हैं और अनेक सेवकों के पूजनीय भगवान् के साथ सम्बन्ध को स्थापन और गाढ़ करने में बहुत सहायकारी प्रमाणित हुए हैं।

इन लेखों के भिन्न "जीवन पथ" मार्गशिर १९६० वि० में "श्री देवगुरु भगवान् की कुछ और बड़ी २ विशेषताएं" के शीर्षक से एक और लेख प्रकाशित हुआ था। इसको इस पुस्तिका के साथ ही परिशिष्ट के रूप में दिया जा रहा है।

ये सब लेख एकत्र करके रखे हुए पूजनीय भगवान् के व्यक्तिगत पत्र-प्रपत्रों में मिले हैं। इन पर उनके अपने पवित्र हाथों से संशोधन तथा शुद्धियां की हुई हैं। ये भी "आत्मकथा" के संशोधित संस्करण (जो इससे पहले "मेरा अद्वितीय जीवन व्रत और उसके पच्चीस वर्ष" के रूप में "संकलित रचनाएं, खण्ड ५" में दिया गया है) की न्याई बहुत महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। प्रस्तुत संस्करण में इसी संशोधित पांडुलिपि के आधार पर ही इस लेखमाला को प्रस्तुत किया जा रहा है।

अनुसंधानकर्ताओं के लिए यहां उल्लेख करना आवश्यक है कि इस संस्करण की "जीवनपथ" में प्रकाशित लेखमाला से क्या विभिन्नताएं हैं।

१—केवल पहली, दूसरी, पांचवीं तथा आठवीं विशेषताओं में ही पूजनीय भगवान् द्वारा किए हुए संशोधन हैं।

२—इनमें से पहली दो विशेषताओं में उन्होंने प्रथम पुरुष (First Person) के स्थान पर अन्य पुरुष (Third Person) कर दिया था; परन्तु बाकी सबमें प्रथम पुरुष ही रहने दिया था। पठनीयता का विचार करके सभी विशेषताओं को प्रथम पुरुष (First Person) में ही दिया जा रहा है।

३—अन्य सब विशेषताएं बिना किसी परिवर्तन या शुद्धि के थीं अतः उन्हें ज्यों की त्यों छापा जा रहा है।

४—जहां-जहां पूजनीय ग्रंथकार ने अन्य पुरुष में करने हेतु परिवर्तन किया था और उसे अब प्रथम पुरुष में दिया जा रहा है वहां "मैं", "मेरा", "मुझे" आदि को कोष्ठ में दिया गया है, ताकि पांडुलिपि की सत्यता कायम रहे।

देव समाज
सैक्टर ३६-बी, चण्डीगढ़
४ जनवरी, १९८०

के० एल० बौहरा
मंत्री
भगवान् देवात्मा चैरिटीज़ ट्रस्ट

आज का दिन एक विशेष दिन है— विशेष दिन है मेरे लिये, मेरे परिवार के लिये, मेरे कुल और वंश के लिये, हिन्दु जनों और मनुष्य मात्र के लिये। और यदि मैं इससे भी कुछ अधिक कहने का साहस करूं, तो यह दिन विशेष है पशु जगत के लिये, उद्भिद जगत के लिये और भौतिक जगत के लिये। यह वह दिन है कि जिसके सूर्य्योदय के समय आज से इक्कावन वर्ष पहले मेरा **जन्म** हुआ था। यह वह दिन है कि जिसकी रात्रि के समय आज से उन्नीस वर्ष पहले मैंने जीवन-व्रत वा **महाव्रत** ग्रहण किया था।

इस समय तुम अपने २ चित्तों को समाधान करो। और आज के दिन की जो विशेषता है उसे सन्मुख लाने की चेष्टा करो। मेरे जन्म और मेरे जीवनव्रत का तुम्हारे जीवन के साथ जो विशेष सम्बन्ध है, उसे अपने सन्मुख लाओ। यदि यह विशेषता तुम्हारे सन्मुख न आये, और इस विशेषता के सन्मुख आने से तुम्हारे आत्माओं में जो शुभ परिवर्तन आना चाहिये, और जो २ शुभ संकल्प उत्पन्न होने चाहियें, वह उत्पन्न न हों, तो फिर तुम्हारे लिये यह महाव्रत का साधन सुफल नहीं हो सकता। इसलिये तुम्हारे लिये आवश्यक है कि तुम आज के दिन की विशेषता को सन्मुख लाओ, और जिस आविर्भाव और उसके महाव्रत का आज के दिन के साथ सम्बन्ध है, उसके प्रकृत रूप को उपलब्ध करो। मेरा महाव्रत तुम्हारे जीवन में कहां तक सुफल हुआ है, उस पर विचार करो। आज से एक अथवा अधिक वर्ष पहले तुम्हारी जो अवस्था थी, तुम जिन नीच गतियों के आधीन होकर विनष्ट हो रहे थे, उसके दृश्य को सन्मुख लाओ। और फिर उस अवस्था में जिस प्रकार से परिवर्तन आया, जिस के द्वारा परिवर्तन आया, उसे भी स्मरण करो। समय था, जबकि तुम विवश होकर नीच गतियों की लहरों के प्रवाह में बह रहे थे। यह भी पता नहीं था कि नीच गति क्या होती है, और विनाशकारी गति किस का नाम है ? चारों ओर संसार में महाशक्तिशाली नीच गतियों की जो अति प्रबल लहरें उठ रही हैं, वह तुम्हें बहाये लिये जा रही थीं ! और तुम उनके साथ २ विवश होकर

विनाश की ओर बहे जाते थे। कैसा भयानक दृश्य !! आह ! मनुष्य जन्म पाकर, मनुष्य बुद्धि रखकर, और पशुओं की अपेक्षा विद्या और सभ्यता आदि में उन्नत होकर अपने भीतर जो महा प्रवल प्रवृतियां, वासनायें और उत्तेजनायें रखता है, वह वासनायें और उत्तेजनायें उसे जिधर ले जाती हैं, वह उधर को हि विवश होकर चला जाता है, उनके पीछे जाकर महादुःख और क्लेश भोगता है, और औरों के लिये ऐसे दुःख उत्पन्न करता है। घोर से घोर पाप और दुराचार करने के लिये आप प्रस्तुत होता है, और औरों को ऐसी गति में वहा ले जाता है। आप नरक में पड़ता और विनिष्ट होता है, और औरों को अपने साथ डूबने और विनष्ट होने के लिये प्रस्तुत करता है। चारों ओर इस संसार के भीतर लाखों और करोड़ों मनुष्य ऐसी हि दुरावस्था में पड़े हुए हैं। और उनकी बुद्धि और चतुराई, उनका मान और उनकी वड़ाई, उनका धन और उन की सम्पद, उनके सम्बन्धी और उनकी जाति, उनका राज और उनकी सेना, हां उनकी कोई वस्तु भी उन्हें उनकी इस महा भयानक गति से नहीं वचाती ! हां, ऐसी प्रत्येक वस्तु हि अग्नि में ईंधन की न्याई उनकी नीच गति और भयानक अवस्था को और भी अधिक प्रज्वलित कर जाती है। और इस प्रकार इन महा शक्ति शाली नीच गतियों का चक्र इस संसार के भीतर महा प्रबल रूप से जारी है। उनकी बड़ी २ लहरें उठती हैं, और मनुष्यों के दलों के दलों को अपने आगे बहाये लिये जाती हैं!! क्या विज्ञानी और क्या मूर्ख, क्या निर्धन और क्या धनवान, क्या पुरुष और क्या स्त्रियां सब हि जीवन तत्व से अन्धे हैं। कोई यह प्रश्न तक नहीं करता, कि जीवन क्या ? और उसके नियम क्या ? जीवन पथ क्या, और जीवन ज्योति क्या ? तब यदि तुम में से किसी के भीतर कोई ऐसा बोध जाग्रत हुआ है, जिससे तुम अपने जीवन और उसकी गति के सत्य को कुछ न कुछ पहचानने लगे हो, यदि तुम्हारे भीतर कोई ऐसा परिवर्तन आया है, कि जिस से तुम अव उन वासनाओं और उत्तेजनाओं के हि आधीन रहने के स्थान में उनसे कुछ वा बहुत कुछ ऊपर हुये हो, और उनके विनाशकारी आधिपत्य से निकल कर जीवन की उच्च गति लाभ करने के योग्य हुये हो और आगे के लिये तुम्हारे सन्मुख जीवन का महाकल्याणकारी मार्ग खुल गया है और इस प्रकार लाखों करोड़ों मनुष्यों की अपेक्षा तुम्हारा अपना जीवन विशेष बन गया है, तो तुम्हारे लिये समय है, कि आज के दिन तुम विचार करके देखो कि यह तुम्हारी विशेषता कहां से ? यह परिवर्तन कहां से ? यह जीवन की उच्चगति कहां से ? इस सारे दृश्य के सन्मुख आने पर आज के दिन की विशेषता निश्चय तुम्हारे आगे प्रकाशित होगी।

फिर आज का दिन क्या इसलिये विशेष है कि आज से इक्कावन वर्ष पहिले

पौषवदि प्रतिपदा के दिन मेरा जन्म हुआ ? क्या यह सच नहीं, कि आज से हि ५१ वर्ष पहले, और सम्भव है, ठीक उसी महूर्त में, और भी सैंकड़ों हज़ारों मनुष्यों ने जन्म ग्रहण किया हो ? इसलिये आज का दिन दिन के विचार से विशेष दिन नहीं। जन्म लेने को उस दिन औरों ने भी जन्म लिया होगा, परन्तु वह आज तुम्हारे साथ क्या सम्बन्ध प्रदर्शन करते हैं ? आज का दिन विशेष है, इसलिये कि इस दिन इक्कावन वर्ष पहले इस देश में मनुष्य जगत् के भीतर एक ऐसे आत्मा का प्रकाश हुआ, कि जिसके अस्तित्व में ऐसी विशेषतायें थीं कि जिसके साथ सम्बन्ध स्थापन करके तुम्हारे जीवन में भी विशेष परिवर्तन आ गया। इसलिये यदि आज के दिन में अपने जीवन की उन विशेपताओं में से कुछ बड़ी २ विशेषताओं को तुम्हारे सन्मुख लाने की चेष्टा करूं, कि जिनके द्वारा विशेष फल उत्पन्न हुये हैं, तो निस्सन्देह ऐसी चेष्टा तुम्हारे कल्याण की हेतु और आज के सम्मिलन के लिये विशेष रूप से उपयोगी होगी।

मेरे अस्तित्व की जो बड़ी २ विशेषतायें तुम्हारे सन्मुख आकर मेरे साथ तुम्हारे सम्बन्ध को गाढ़ कर सकती हैं, और जिस पर विचार के साधन से तुम मेरे और भी निकट हो सकते हो, उन में से कुछ यह हैं :—

१

जन्म विषयक विशेषता। आक और आम दोनों बराबर के शब्द हैं, दोनों "आ" से आरम्भ होते हैं; परन्तु दोनों के फल अलग २ है। दोनों को हि बोओ, एक हि भूमि में बोओ, एक हि कुएं से जल दो, परन्तु फिर भी उन के क्या वृक्ष और क्या फल एक प्रकार के न होंगे। दोनों हि विभिन्न फल लावेंगे—ऐसे विभिन्न कि जिनमें आकाश पाताल का अंतर दिखलाई देगा। यह एक साधारण कहावत है, कि वृक्ष अपने फलों से पहचाना जाता है, और यह निश्चय सच्ची कहावत है। आम की विशेषता उस के बीच से हि होती है। इसी प्रकार विशेष २ मनुष्यों की विशेषता भी उन की उत्पत्ति से हि होती है।

(मैंने)* अपने जन्म काल से हि अपनी विशेषताओं के बीज लाभ किए थे।

*संशोधित पाँडूलिपि में पहली और दूसरी बिशेषताओं में 'अन्य पुरुष' (श्री देवगुरू भगवान, वह, उनके, उनको आदि) का प्रयोग है; अन्य सब बिशेषताओं में 'प्रथम पुरुष' का (मैं, मेरा, मुझे आदि)। पठनीयता की सुविधा के लिए सब जगह प्रथम पुरुष ही छापा जा रहा है। जिन स्थानों पर पूजनीय ग्रन्थकार ने अन्य 'पुरुष' किया था वहां मैं, मेरा, मुझे आदि को कोष्ठ में दिया जा रहा है।

(मेरे) आत्मा में सात्विक और देव कोष सम्बन्धी जिन शक्तियों के बीज आए थे वह जैसे विशेष थे वैसे हि (मेरे) विकाश के लिए क्या मेरी हृदय भूमि, और क्या (मेरी) मान्सिक शक्तियों की भी बिशेषता थी। विश्व में जैसे विविध सम्बन्ध गत विविध प्रकार के प्रभावों को लाभ करके विविध प्रकार के रूप और गुण विशिष्ट अस्तित्वों की उत्पति हुई है, उसी परिवर्तन चक्र के अनुसार (मेरा) अस्तित्व भी एक विभिन्न रूप और गुण संयुक्त निराला अस्तित्व बन गया। विभिन्नता का यह नियम (Law of differentiation) सारी सृष्टि में काम कर रहा है, और नाना अस्तित्वों को उलट पुलट करके नये २ रूप दे रहा है। इसी विभिन्नता के नियम के द्वारा भौतिक शक्ति के परिवर्तन से जीवनी शक्ति और फिर उस्से आकार गठनकारी जीवनी शक्ति प्रगट हुई है। आकार गठनकारी जीवनी शक्ति से लाखों प्रकार के उद्भिद और पशु उत्पन्न हुये और पशु जगत में से जिन २ का आकार बदलते २ मनुष्य के आकार के समीप आता गया, उन्हीं में से मनुष्य का प्रकाश हुआ। फिर इस मनुष्य जगत में विभिन्नता के नियम ने लाखों वर्ष काम करके उसके अन्तर जो लीला की, और किसी को ऊपर और किसी को नीचे पहुँचाया, उससे अति विस्मय जनक परिवर्तन आगया। इसी विकाश क्रम में एक ऐसा जन उत्पन्न हो गया कि जिस ने मनुष्य जगत में जन्म लेकर उसी प्रकार विशेषता लाभ की, जिस प्रकार पशु जगत के विकाश में मनुष्य ने जन्म पाकर विशेषता लाभ की थी। (मेरा) जन्म इसी विशेषता का प्रकाश था।

२

मेरे जीवन की **दूसरी विशेषता** मेरे जीवन में **विकाश कार्य्य की प्रणाली** की है। अर्थात् मेरे जीवन के साथ प्रत्येक सम्बन्धी का सम्बन्ध, मेरे चारों दिग के सारे सामान, मेरे जीवन के **विकाश** में जिस प्रकार सहायक हुये हैं उसकी भी बहुत बड़ी विशेषता है। (मेरे) कुल जीवन पर दृष्टि डालने से भली भान्त प्रगट हो सक्ता है कि जिन नाना घटनाओं में पड़कर और लाखों जन बरबाद हुये हैं, और अपनी अवस्था में नीच बन गये हैं, वहीं घटनायें (मेरे) विकाश के

पथ में सहायकारी प्रमाणित हुई हैं। जो घटनायें करोड़ों के लिए हानिकारक हुई हैं, वही घटनायें (मेरे) जीवन के लिए कल्याणकारी बन गई हैं। जिस ग्रह, परिवार और वंश में (मेरा) जन्म हुआ उसी में और बहुतों का भी जन्म हुआ था। जिस नगर में (मैं पला था) उसीमें और भी सैंकड़ों जन पले थे। यहां तक कि जिस स्कूल में (मैंने) पढ़ना आरम्भ किया था उस में भी (मेरे) नगर के और कितने हि लोग पढ़ते रहे थे। परन्तु इस सब का (मुझ) पर जो फल हुआ, वह और सबों से भिन्न था। इसी लिये क्या (मेरे) खेल कूद में, क्या लिखने पढ़ने में, क्या समझ बूझ में, क्या चिन्ताओं और आकांक्षाओं में औरों से विभिन्नता और विशेषता वर्तमान थी। प्राय: सोलह वर्ष की आयु में जब घर से बाहर जाकर (मैं) रुड़की कालेज में शिक्षा पाने के लिए गया, तब से यह विशषता और भी स्पष्ट रूप से प्रगट होने लगी। जो पुस्तकें (मैंने) वहां पढ़ीं वही और बहुतों ने भी पढ़ीं। जिन शिक्षकों से (मैंने) शिक्षा पाई, उन्हीं से औरों ने भी शिक्षा पाई। वहां जिनसे (मेरा) मेल जोल था, उनसे औरों का भी मेल जोल था। कालेज छोड़ने पर भी बाहर के बहुत से सामान जो (मेरे) लिये थे, वही और हजारों के लिए थे। परन्तु फिर भी जिन पुस्तकों के पढ़ने से, जिन लोगों में रहने से, जिस वायु में श्वास लेने से, जिन पदार्थों की प्राप्ति से और लाखों मनुष्य नीच गति को प्राप्त हुए हैं, उन्हीं के द्वारा आवृत रहकर (मैं) उच्च होता गया हूं। प्रकृति के जिन सामानों ने औरों को कुचल दिया है, उन्हीं में रहकर केवल यही नहीं, कि (मैं) कुचला नहीं गया, कितु ऊंचा होता गया हूं। यह सब कुछ जैसे विस्मय जनक है वैसे हि पूर्णत: सत्य है।...जो घटनायें औरों के अन्तर विष संचार कर गई हैं, वह मुझ को अमृत दान दे गई हैं। मैं निश्चय एक २ महा भयानक घटना में पड़ कर बहुत दु:खी हुआ हूं, बहुत तड़पा हूं, बहुत रोया और बिलबिलाया हूं, एक २ बार मृत्यु के समीप पहुंच गया हूं। औरों को मेरे जीने की कोई आशा नहीं रही, एक २ समय में क्लेश और पीड़ा की विरोधी घटनाओं की जो अवस्था आई है, वह वर्णन से बाहर है, परन्तु मैं अपनी आंतरिक विशेषता के द्वारा ऐसे एक २ अति महा संग्राम में भी जब उत्तीर्ण होकर निकला हूं तो जैसे बहुत देर तक बादलों से छिपा हुआ सूर्य्य जब निकलता है, तो पहिले से बहुत तेज के साथ निकलता है, वैसे हि मैं भी पहले की अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक-ज्योति और शक्ति लाभकर के निकलता रहा हूं। अति शीतकाल में जैसे उद्भिद् जगत् में हजारों पौदे मर जाते हैं, परन्तु कितने हि केवल यही नहीं कि मरते नहीं, किन्तु हरे भरे रहते हैं और उस से भी बढ़कर सुन्दर २ फूल प्रसव करते हैं, उसी प्रकार प्रकृति के विरुद्ध घटना चक्र में पड़ कर भी मैं उच्च से उच्च विकाश

लाभ करने के योग्य हुआ हूं, और इस प्रकार जो घटनायें एक साधारण मनुष्य को चकना चूर और विनष्ट कर देती हैं, वह मेरे लिए कल्याणकारी प्रमाणित हुई हैं, और जैसे मेरे जीवन की उत्पत्ति विषयक विशेषता है, वैसे हि प्रकृति के भीतर उसके विकाश की भी बहुत बड़ी और विस्मय जनक विशेषता है।

३

मेरे जीवन की तीसरी विशेषता लक्ष्य विषयक विशेषता है, अर्थात् जिस परम लक्ष्य को मैंने अपने जीवन में पूरा किया है, वह लक्ष्य सम्पूर्ण रूप से विशेष और निराला है। इस संसार में लाखों और करोड़ों मनुष्य केवल नीच कोषों अर्थात् प्रवृत्ति, वासना और उत्तेजना कोष सम्बन्धी भावों को लेकर हि अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं, और एक वा दूसरी नीच वासना वा उत्तेजना आदि की तृप्ति को लक्ष्य रख कर हि रात दिन हिलते जुलते हैं, और यहीं के आराम और यहीं के सुखों की प्राप्ति को हि मुख्य रखते हैं। परन्तु मैंने जिन उच्च भावों के बीजों को लेकर जन्म लिया था, उनके प्रस्फुटिक होने पर उन लाखों और करोड़ों की तुलना में एक बिलकुल निराली चाल ग्रहण की। युवा अवस्था के आरम्भ होने के समय से हि मेरे भीतर निराली आकांक्षायें और निराली इच्छायें पाई जाती थीं। युवा अवस्था का काल बहुत नाजुक समझा जाता है, सचमुच ऐसी अवस्था में लाखों जन एक वा दूसरी नीच प्रवृत्ति के अधीन होकर अपने जीवन का नाश कर लेते हैं। परन्तु इस काल में पहुंचकर मुझ पर इन वासनाओं और प्रवृत्तियों, आदि में से किसी का अधिकार न था। यहां का कोई पद, यहां का कोई पदार्थ, यहां का यश, अथवा नाम, यहां का कोई सुख, यहां का सन्मान, यहां की कोई उपाधि आदि मेरा कोई लक्ष्य न था। किन्तु इस से ऊपर कितने हि उच्च भाव जो मुझ में प्रबल रूप से जाग्रत और उन्नत हो चुके थे, उन्हीं का मुझ पर अधिकार था, और उन्हीं को लेकर मेरा लक्ष्य था। यह लक्ष्य केवल उच्च लक्ष्य हि न था—उच्च लक्ष्य, साधारण अर्थ में और भी कितने हि महा पुरुषों का रहा है—किन्तु बिलकुल असाधारण और निराला उच्च लक्ष्य था। मैं एक ओर इस पृथिवी में चारों ओर पाप और चारों ओर नीचता को देखता था, और उनके कारण क्या मनुष्य और क्या पशु जगत् आदि में अत्यन्त अनुचित दुख और क्लेश और परस्पर अनमेल वा अनेकता की नारकी अवस्था को

अनुभव करता था। दूसरी ओर उनमें उच्च भावों का अभाव देखकर उन्हें उच्च मेल और उच्च जीवन के अति शुभ शान्ति और आनन्द जनक फलों से वंचित अनुभव करता था। मुझे यह दृश्य आराम नहीं देता था। और उसकी क्रमागत उन्नति से धीरे २ वह समय पहुंच गया, जब कि इस अवस्था के दूर करने के लिए मेरी आकांक्षा इतनी बलिष्ट हो गई, कि मैं फिर केवल साधारण उपकार के कुछ कामों को करके हि तृप्त न हो सका, और ऐसी प्रवल इच्छा उत्पन्न होने लगी कि अब अपना सम्पूर्ण जीवन एक इसी महा लक्ष्य और महा कार्य्य के पूरा करने में व्यतीत करूं। यही वह समय था, जब कि मैंने १५०) मासिक वेतन की नौकरी को छोड़ दिया, और अपने निराले परमलक्ष्य और परम हित के साधन के लिये पूर्ण रूप से अपने आपको भेंट किया। मेरी यह नौकरी कोई बुरी नौकरी न थी। मैं उस समय में भी शिक्षक था। मुझे परिश्रम भी बहुत नहीं करना पड़ता था। इसके भिन्न औरों के भले के लिए किसी मासिक वा दूसरे पत्र के द्वारा, व्याख्यान और उपदेशों के द्वारा, और कई और प्रकार से भी लोगों का उपकार करता था। परन्तु इस सब के होने पर भी मुझे तृप्ति नहीं मिलती थी, और नौकरी के घण्टे दूभर बोध होते थे। भीतर से ऐसा अनुभव होता था, कि यह वह काम नहीं है जिसके पूरा करने के लिये मैं उत्पन्न हुआ हूं। यह मेरे जीवन का कार्य्य नहीं; यह मेरे जीवन का लक्ष्य नहीं। इस लिये वह काम करके भी भीतर आराम नहीं मिलता था। किन्तु जब मैंने अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया, तो उस दिन से केवल यही नहीं, कि मैंने सच्ची और उच्च तृप्ति लाभ की, किन्तु मेरे सारे जीवन की गति बदल गई। मेरे इस्तीफ़ा देने पर लोगों में एक कोलाहल मच गया। अपनी २ अवस्था के अनुसार कितनों ने अपने मत प्रकाश करने आरम्भ किये। किसी ने कहा कि इस के दिमाग़ में कुछ फितूर आ गया है। और किसी ने कहा यह सौदाई हो गया है। धार्मिक कहलाने वाले भी यही कहते थे, कि तुम अच्छे पुरुष हो, धार्मिक पुरुष हो, औरों को पहले से हि धर्म्म की शिक्षा देते हो, फिर नौकरी छोड़ने से क्या लाभ ? तुम परिवार रखते हो, तुम्हारे कई बाल बच्चे हैं, उनका भार किस पर डालोगे ! अपने अवकाश के समय में उपकार का काम करते रह सकते हो, इतनी बड़ी नौकरी का छोड़ना कदापि उचित नहीं। यह सब लोग जो इस प्रकार मत प्रकाश करते थे, अपने आप को बहुत स्याना और चतुर समझते थे। और मुझ को उल्लू और मूर्ख समझते थे, परन्तु मैं उनके विचार में जो कुछ हूं, अपने इस लक्ष्य के लिए सच्चा रहना चाहता था, कि जो केवल उच्च हि न था, किन्तु बिलकुल निराला और अनोखा था, और जिसका दृष्टान्त इससे पहले पृथिवी ने नहीं देखा था, और जिसके देखने, ग्रहण और पूरा करने के लिए मैंने जन्म लिया था।

४

मेरे जीवन की **चौथी विशेषता अटल विश्वास** (faith) और आत्मनिर्भर (self-reliance) की विशेषता है। विश्वास क्या? निर्भर, अथवा भरोसा। किस पर भरोसा? प्रकृति के किसी अटल शुभ नियम पर। किस प्रकार? अर्थात्, किसी शुभ नियम के पूरा होने में मेरे लिए जो कुछ कर्तव्य है, उसमें यदि मैं सच्चा रह सकूं तो मेरे द्वारा उसकी जय अवश्य होगी। मेरा किस बात पर अटल विश्वास था? अपने जीवन व्रत की जय पर! क्यों? इसलिए कि मेरा जीवन व्रत सृष्टि के विकाश के अटल नियम पर स्थिति करता था, अर्थात् मैंने औरों के विकाश वा महोच्च कल्याण साधन के निमित्त व्रत लिया था, कि जिस व्रत के पूरा करने के लिये हि प्रकृति ने मुझे आविर्भूत किया था। अतएव यदि एक ओर प्रकृति के महाकल्याणकारी विकाश के नियम के अनुसार मेरा प्रकाश हो, और दूसरी ओर मैं अपनी उच्च प्रकृति के वश होकर उसके पूरा करने के निमित्त व्रत ग्रहण करूं, तो फिर मेरे जीवन व्रत के विजयी होने में क्या संदेह हो सकता है? यही अपने व्रत की जय पर निश्चय का भाव, मेरे विश्वास की, और अपने व्रत के लिये अपनी ओर से सच्चे रहने की योग्यता पर निश्चय, मेरे आत्मनिर्भर की विशेषता थी।

यही वह विशेषता थी कि जिसके कारण मैं अपने जीवनव्रत के पालन में एक ओर जहां अपनी ज्योति के लिये सच्चे रहने की योग्यता रखता था, वहां दूसरी ओर उत्तर दिशा प्रदर्शनी चुम्बक की सूई की न्याईं मेरे मार्ग में जो कोई बाधा देता हो, (जानबूझ कर देता हो, वा अनजाने) मैं उसकी परवाह न करके अपनी ज्योति और अपने कर्तव्य विषयक नियम (principle) की ओर से विमुख नहीं होता रहा। इसलिये वह सैकड़ों जन कि जिनको इतना भी ज्ञान नहीं, कि उच्च जीवन क्या, और उसके प्रचार के लिए जीवनव्रत और उसके पालन के नियम क्या? वह मुझे अपनी चाल में किसी प्रचलित प्रथा और किसी के मत वा परामर्श वा किसी के बैर वा द्वेष, वा किसी की विरोधिता आदि की ओर से सम्पूर्ण रूप से उदासीन देखकर बहुत बड़ा घमंडी और अहंकारी समझते थे। और अब भी समझते हैं। यह वह नहीं समझ सके, और नहीं समझ सकते, कि अपनी उच्च गति प्रदर्शिनी ज्योति और शुभ के लिये जिस में सदा सच्चे रहने की

विशेषता पाई जाती हो, उस के लिए संसार की चाल से बेचाल हो जाना, अपने पथ में किसी सम्बन्धी वा किसी और जन की असम्मति की परवाह न करना, एक अवश्यम्भावी बात है। और यह उसकी बेपरवाही अति पवित्र, और उच्च शक्ति विधायिनी वस्तु है। ऐसा मनुष्य अहंकारी नहीं होता, और नहीं हो सकता, वह केवल सच्चा विश्वासी होता है, और आत्म-निर्भर का भाव रखता है। अहंकारी अहंकार के द्वारा विनष्ट हो जाता है, परन्तु पर-शुभाकांक्षी सच्चा विश्वासी दिनों दिन उच्च शक्ति और उच्च जीवन लाभ करके अपने महत उद्देश्य के पूरा करने के अधिक से अधिक समर्थ होता है। यही कारण था, कि मैंने किसी अहंकारी की न्याईं विनष्ट होने के स्थान में अपने परम उद्देश्य के सिद्ध करने के लिए अधिक से अधिक योग्यता और इसी लिए अपने जीवनव्रत में सिद्धि लाभ की।

यद्यपि इस संसार में जहां मनुष्य की इतनी आवश्यकतायें हैं, और वह धनादि पदार्थों का इतना प्यार रखता है, एक बड़े परिवार के विविध प्रकार से उचित पालन और पोषण का बोझा रखकर एक बड़े रोजगार का त्याग करना मेरे लिए कोई सुगम काम न था, और बिना उच्च विश्वास के ऐसा करना सम्भव भी न था, तो भी नौकरी छोड़ने के अनन्तर मुझे अपने जीवन व्रत के लिए सच्चे रहने, और लगातार संग्राम करने में जिन महा घोर कठिनाइयों और दुःखों का सामना करना पड़ा है, उनका वर्णन नहीं हो सक्ता, और न कोई और जन जो मेरी अवस्था में नहीं पहुंचा, उनका कोई ठीक अनुमान हि कर सक्ता है। फिर भी तुम कुछ न कुछ कल्पना कर सकते हो, कि ऐसे समय में जब कि मेरे चारों ओर के लोग मुझे अपनी चाल से बेचाल देख कर, और मुझे पागल जानकर हंसी उड़ाते हों; राह में जाता देखकर जान पहचान रखने वाले और कई मित्रता का दम भरने वाले अपनी घृणा के प्रकाश में मुंह फेर लेते हों—जब कि जो जन कुछ भी मेरी ओर आकृष्ट होकर आते हों, उनकी ताक में रहते हों, और उन्हें पथ भ्रष्ट जानकर उन्हें नाना प्रकार के धोखे और भुलावे देकर मुझसे विमुख कर देते हों,—जब कि मेरे एक वा दूसरे अनुयायी पर कि जो उनके बहकाने से न बहकता हो, अत्याचार करते हों, और एक २ जन को बाज़ारों में सैकड़ों लोगों के सामने मारते पीटते हों, और एक २ बार लट्ठ मार के सिर से खून बहा देते हों—जब कि विरोधी जन मेरे मकान में ईंटों और रोड़ों की वर्षा करते हों, मेरी प्रचार सम्बन्धी पुस्तकों को छीनकर फाड़ फेंकते हों, और किसी वस्तु को तोड़ फोड़, और किसी को आग लगाकर फूंक देते हों, जबकि मुझ पर और मेरी सम्बन्धी स्त्रियों पर नाना प्रकार के अभियोग

लगाते हों, मुझे व्यभिचारी, ठग, चोर, लुटेरा, झूठा, प्रवंचक और खूनी बतलाते हों—जब कि कितने हि समाचार पत्रों में भी इसी प्रकार लिखते और प्रसिद्ध करते हों—जब कि मेरे और मेरे कार्य्य के नाश के लिए खुल्लमखुल्ला सभायें करके प्रार्थनायें करते हों—जब कि ऐसे कई आत्मा जिन्होंने मुझ से कई प्रकार का शुभ और कल्याण पाया हो, अपनी एक वा दूसरी दुर्बलता या नीचता से मुझ से विमुख हो कर कृतज्ञता के स्थान में मुझे और मेरे काम को सब प्रकार से नष्ट कर देने की चेष्टायें करते हों,—जबकि कई एक जन जिन्होंने मेरे प्रचार के कार्य्य में एक २ बार जीवन भेंट करके भी फिर उस की कठिनाइयों के सामने खड़े रहने की योग्यता न रख के मुझे छोड़कर फिर एक वा दूसरा व्यवहार ग्रहण कर लेते हों—जब कि जो जन साथी भी हों, उनकी ओर से भी उनके चरित्र के सर्वथा उच्च न होने के कारण उन पर कोई पूरा भरोसा न हो सकता हो—जब कि और तो और अपने बहुत निकट के सम्बन्धी भी अपनी एक वा दूसरी नीचता से महाक्लेश पहुंच ने में अपनी ओर से कुछ कमी न करते हों—जब कि दो चार सप्ताह नहीं, किन्तु वर्षों तक अदालत के शिकंजे में फंसा कर हज़ारों रुपये की ज़ेरबारी के भिन्न मुझे नाना प्रकार से उत्पीड़त किया जाता हो, इत्यादि इत्यादि—जब कि लाखों मनुष्यों से भरी हुई दुनिया में मुझे कोई अपना दिखाई न देता हो—जब कि मेरे सामने दूसरों के उद्धार और कल्याण के व्रत साधन में मुझे उपरोक्त प्रकार के और उनके भिन्न और कई प्रकार के फल मिलते हों, तो क्या तुम्हारे लिए इतना समझना भी सहज नहीं कि ऐसी अवस्था में जैसे औरों के शुभ के लिए लगातार आकांक्षा रहना और उसके लिए संग्राम करना कोई साधारण बात नहीं, वैसे हि इस अनोखे, और महा कठिन संग्राम में हिमालय पर्वत की न्याईं स्थिर रहना, और पांव पीछे न रखना, बिना उस अटल विश्वास और आत्मनिर्भर के सम्भव न था, कि जिस को मैंने अपने जीवन की चौथी विशेषता बतलाया है।

५

त्याग क्या? किसी आकर्षण के पीछे कुछ छोड़ने के लिए बाध्य होना। इस संसार में "त्याग" की कमी नहीं है। एक २ वेश्या की ओर एक विशेष वासना के द्वारा आकृष्ट होकर सैंकड़ों जन अपना घर बार और धन खो देते हैं, अपनी

पत्नी को छोड़ देते हैं, और उसके भूषण आदि बेच देते हैं। मदिरा के पीछे एक एक जन अपनी सम्पद और अपना शरीर नष्ट कर देता है। जुए के पीछे एक २ जुवारी अपने धन को खोकर निर्धन और कंगाल हो जाता है। धन वा यश के लालच में एक २ सेनापति वा सिपाही अपनी स्त्री और अपने बच्चों को छोड़ कर रण-क्षेत्र में जाता है, और बन्दूक की गोली और तोप के गोले की ओर कुछ ध्यान न देकर युद्ध में अपने प्राण त्याग कर देता है। यह सब कुछ कितना बड़ा त्याग! परन्तु मैंने तो कोई ऐसा त्याग नहीं किया। मैंने तो खाना नहीं छोड़ा, वस्त्र पहनने नहीं छोड़े। पत्नी नहीं छोड़ी, पुत्र नहीं छोड़े। किसी युद्ध-क्षेत्र में गोली नहीं खाई। धर्म्म के लिए घर से निकलकर किसी वृक्ष के नीचे जाकर निवास और धूप, वर्षा और शीत में जंगलों में वास नहीं किया। मैं एक २ योगी की न्याईं कांटों की शय्या पर नहीं लेटा। एक एक साधु की न्याईं शीत ऋतु में किसी नदी के जल में नहीं खड़ा रहा। ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि नहीं तापी, इत्यादि इत्यादि। फिर मेरा त्याग क्या? और वह भी महा त्याग क्या?

मेरा महा त्याग मेरे महा लक्ष्य के लिए हुआ है। यदि कोई लक्ष्य महालक्ष्य हो, तो उसके पूरा करने के लिए जो त्याग किया जाय, वह त्याग भी **महा त्याग** होता है। कोई महालक्ष्य बिना किसी महा त्याग के पूरा नहीं होता। जो लोग एक वा दूसरी नीच वासना को चरितार्थ करने के लिए एक वा दूसरा त्याग करते हैं, अथवा नाम, यश और पदादि के लिए अपनी जान को जोखों में डालते हैं, अथवा परलोक में किसी सुख भोग की मिथ्या कल्पना करके यहां पर दुःख उठाते हैं, उनका लक्ष्य महालक्ष्य तो कहीं रहा कोई उच्च लक्ष्य भी नहीं होता। क्या यह सच नहीं, कि वेश्या, मद, जुए और धन आदि के वशीभूत होकर सैंकड़ों लोग आप नष्ट होते हैं, और औरों को नष्ट करते हैं? मेरा त्याग किसी ऐसी वासना को लेकर नहीं। किसी की प्रशंसा अथवा निन्दा को लेकर नहीं। किसी से धन वा पारितोषिक पाने और बड़ाई वा पद लाभ करने के लिए नहीं। मैं इन सब वासनाओं से ऊपर हूं। और जो आप ऐसी सब वासनाओं के अधिकार से ऊपर हो, और देव शक्तियों से विभूषित हो, वही औरों को भी उनसे ऊपर ले जा सकता है। वही हर एक सांसारिक प्रलोभन वा भय से ऊपर होता है।

यह महालक्ष्य क्या है? मैंने महाव्रत ग्रहण करने के समय अपने जीवन के इस महा लक्ष्य को इस प्रकार वर्णन किया था:—

"सत्य शिव सुन्दर हि मेरा परम लक्ष्य होवे,
जग के उपकार हि में जीवन यह जावे"

अर्थात् मेरा जीवन व्रत कुत्सित असत्य के स्थान में सुन्दर सत्य के प्रतिष्ठित

कुत्सित अमंगल के स्थान में सुन्दर हित के स्थापन और स्वार्थ के स्थान में जगत् के इसी प्रकार के उपकार में रत रहने के लिए है।

"सत्य" के शब्द का व्यवहार लोगों में कुछ कम प्रचलित नहीं है। इस देश में "सत्य नारायण" की कथाएं बहुत होती हैं। "सत्य नाम कर्त्तापुरुष" की भी बहुत पुकार है। कितने हि ऐसे झण्डे लहराते हुए देखे जाते हैं, कि जिन पर "सत्यमेव जयते" लिखा हुआ होता है, कि जिसका अर्थ यह है कि "सत्य की हि जय होती है"। "सत्यनामी" एक सम्प्रदाय का भी नाम है। परन्तु इस सब के होने पर भी असत्य के स्थान में "सत्य" का अनुराग और सत्य की महिमा कहां है ? सत्य का अनुराग क्या ? अर्थात मनुष्य को अपने विश्वास वा कथन वा मत वा कार्य्य में जो कुछ मिथ्या और कल्पित प्रतीत हो, उसे सत्य की जय के लिए त्याग करे। और ऐसे त्याग से उसे जो कुछ धन खोना पड़ता हो, जो कुछ व्यवसाय छोड़ना पड़ता हो, जो कुछ अपनी सुख्याति छोड़नी पड़ती हो, जो कुछ सम्बन्धी और मित्रादि छोड़ने पड़ते हों, जो कुछ सुख छोड़ना पड़ता हो, उस सब को त्याग करने के लिए सच्ची आकांक्षा और हृदयगत बल रखता हो। परन्तु क्या यह सच नहीं, कि साधारण जन धन के लिए, एक २ व्यवसाय के लिए, अनुचित बदनामी और अपमान से बचने के लिए, लड़ाई झगड़े से रक्षा पाने के लिए, एक वा दूसरे मुकदमें में फतह लाभ करने के लिए, एक वा दूसरे सम्बन्धी के साथ सम्बन्ध स्थिर रखने के लिए, एक वा दूसरे इन्द्रिय-सुख के लिए, सत्य के स्थान में असत्य की हि जय चाहते हैं, और सत्य को त्याग कर असत्य की हि जय के लिए सारा यत्न करते हैं ? और यह नीच यत्न करने वाले क्या वही लाखों जन नहीं होते, कि जो एक वा दूसरे धर्म्म सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं, और जो अपने सम्प्रदाय की जन-संख्याओं की अधिकता पर अभिमान करते हैं ? हां, ऐसे धर्म्म सम्प्रदायों में कितने [हि धर्म्म सम्प्रदाय तो सत्य के स्थान में जान बूझकर असत्य के प्रचार की शिक्षा देते हैं। किसी सम्प्रदाय में सहस्र २ लोग किसी मत वा विश्वास को झूठा जान कर भी औरों के सामने उसके मानने का दम भरना जातीय उन्नति के लिए आवश्यक समझते हैं। इस के भिन्न हज़ारों और लाखों आदमी एक २ मत वा विश्वास को झूठा जान कर भी उस को मुंह से इसलिए सत्य कहते हैं, कि वह जिस सम्प्रदाय में उत्पन्न हुए हैं, उसी में रहना उनके लिए आवश्यक हो गया है। हज़ारों जन एक २ मत वा विश्वास को दिल से झूठा जान कर उसे इसलिए सच्चा बतलाते हैं, कि वह जिस सम्प्रदाय में एक बार अपना नाम लिखवा चुके हैं, और कुछ काल तक पहले सरलता के साथ उसे औरों के सामने सच्चा कह चुके हैं, उस को अब झूठा कहना उनके

लिए बहुत कठिन है, इत्यादि २। अब जहां धर्म्म सम्प्रदायों की ऐसी दुर्गति है, और मनुष्य नीच वासनाओं का दास होकर धर्म्म के नाम से भी जान बूझकर सत्य के स्थान में असत्य का पक्षपाती बन रहा है, वहां तुम सोच सकते हो, कि मेरा यह जीवन व्रत लेना, कि मैं जो कुछ सत्य जानूंगा, उसी को स्थापन करूंगा और उसकी जय के लिए जो कुछ भयानक से भयानक त्याग आवश्यक हो, उसे स्वीकार करूंगा। कितना बड़ा व्रत ! और आज तक इस महाव्रत के पालन के निमित्त सब प्रकार का त्याग कितना बड़ा त्याग ! मैने जीवन विषयक सत्यों के खोजने और उनके लिए प्रत्येक अवस्था में सच्चे रहने में जो कुछ महा त्याग स्वीकार किया है, उससे मेरे जीवन में जैसे दिनों दिन उसका अधिक से अधिक प्रकाश हुआ है, और उसकी ज्योति ने अधिक से अधिक मेरे जीवनपथ को उज्वल किया है, वैसे हि इस सत्यानुराग और उसके सम्बन्ध में मेरे असाधारण त्याग ने मुझे धर्म्म जीवन की जिस सत्य और अटल आधार भूमि पर पहुंचाया है, वहां पर आज तक कभी किसी को नहीं पहुंचाया और उसके विषय में जो २ अति दुर्लभ और अमूल्य तत्व मुझ पर प्रकाशित किए हैं, वह किसी पर प्रकाशित नहीं किए, और मेरे हृदय को जिस अपूर्व्व ज्योति से भरा है, उस से आज तक कभी किसी को नहीं भरा। इस मार्ग में मुझे जैसा संग्राम करना पड़ा है, और एक २ सम्प्रदाय की मिथ्या और हानिकारक शिक्षा के प्रकाश करने में जिन २ दुःखों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, और जो २ विविध प्रकार का उत्पीड़न सहना पड़ा है, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

और तो और मेरे अपने साथियों से मुझे जो कुछ क्लेश पहुंचा है, वह भी निराला है। एक २ साथी ने मेरा साथ नहीं दिया, एक २ शिष्य ने मुझे उलटे रूप में देखा है। ऐसी एक २ शिक्षा को जो उसने मुझ से हि पाई और मुझ से लाभ की, उसी को जब मैंने भ्रान्तिमूलक देखा तो उसने उसे अपने संस्कार के वश होकर त्याग करना नहीं चाहा। परन्तु कुछ हि हो, मेरा कोई साथी अथवा शिष्य हो वा न हो, मुझे उसकी कभी परवाह नहीं हुई। (मैंने अपने)आपको इस मार्ग में अकेला देखा है, और अकेला हि संग्राम किया है। मैंने जो सत्य समझा है, उसका मैंने साथ दिया है, और उसी की औरों को शिक्षा दी है, और उसी की जय चाही है, और उसकी जय से अपने जीवन व्रत को सफल किया है।

इसी प्रकार शिव का शब्द भी हमारे देश में बहुत प्रचलित है। बहुत से लोग शिव २ उच्चारण करते रहते हैं, शिव की पूजा भी बहुत से मन्दिरों में होती है, शिवरात्रो का एक प्रसिद्ध त्योहार भी है। योगी लोग शिव को हि

अपना महेश्वर मानते हैं। कितने हि भंग पीने वाले भी भंग प्रस्तुत करके शिव का नाम लेकर पीते हैं। वेदान्ती लोगों में भी बहुत से जन "शिवोहं शिवोहं" का जाप करते रहते हैं। परन्तु उपरोक्त शिवोपासकों के सामने शिव की जो मूर्ति आती है, और शिव का नाम लेने से जो रूप उनके सन्मुख आता है, वह मूर्त्ति और वह रूप वह नहीं, कि जिसका मैं अनुरागी हूं। मैं जिस शिव का अनुरागी हूं—उसका अपर नाम मंगल अथवा शुभ वा हित है। और जब मैं कहता हूं कि शिव मेरे जीवन का लक्ष्य है, तो उसका अर्थ यह है, कि विश्वगत सम्बन्धों में जो कुछ अशुभ है, उसको मिटाकर मैं उसके स्थान में शुभ लाना चाहता हूं—जो कुछ हितकर और मंगलप्रद है, उसे स्थापन करना चाहता हूं। नीच और उच्चगति मूलक सम्बन्धों के विषय में अद्वितीय ज्योति के प्राप्त होने से मैं स्पष्ट रूप से देखता हूं, कि उनमें शुभ क्या है और अशुभ क्या है। इस शुभ का अनुरागी होकर मैं जो कुछ विश्वगत सम्बन्धों में विनाशकारी है, उसे दूर करता हूं—जो कुछ अयथा और अशुभजनक है, उसे मिटाता हूं, और जो कुछ हित जनक अथवा मंगलप्रद है, उसे स्थापन करता हूं। मेरा यह शिवानुराग बिलकुल निराला है। साधारण जनों पर नीच वासनाओं और सुखों का इतना अधिकार है, कि वह उनके वशीभूत होकर औरों के सम्बंध में—और तो और अपने घर के निकट से निकट के सम्बंधियों के सम्बन्ध में भी—नाना प्रकार के पापाचार करके अपने और उनके लिए अशुभ की उत्पत्ति करते रहते हैं, परन्तु उन्हें इस अशुभ का कोई बोध नहीं होता। वह नाना प्रकार से एक दूसरे का अशुभ करके केवल यही नहीं, कि कुछ दुःखी नहीं होते, किन्तु उलटा सुखी होते हैं। लाखों जन इससे भी बढ़कर किसी और के शुभ को देख तक नहीं सकते, और अपने स्वभाव से हि दूसरे का अशुभ देख कर प्रसन्न और शुभ देखकर ईर्षा की आग से जलने लगते हैं। वह जन्म काल से हि ऐसी महा नीच प्रकृति लेकर आते हैं, कि जिस से वह अशुभ को प्यार, और शुभ को घृणा करते हैं यहां तक कि आत्मा को छोड़कर किसी सांसारिक लाभ अथवा अपने किसी शारीरिक शुभ की भी कुछ परवाह नहीं करते। वह जानबूझ कर एक २ वासना और असंयम (बदपरहेज़ी) के द्वारा अपने शरीर के लिए नाना प्रकार के दुखदाई रोग उत्पन्न कर लेते हैं, नाना प्रकार की अपनी और हानि कर लेते हैं, और अपनी ऐसी अशुभदायिनी गति को किसी प्रकार छोड़ना नहीं चाहते। यह लोग जन्मकाल के अनन्तर ज्यों २ अधिक वयस लाभ करते हैं, त्यों २ अपने और औरों के लिए शुभ के स्थान में नाना प्रकार के अशुभ का बीज बोते रहते हैं, वह अशुभ को चाहते हैं, अशुभ को प्यार करते हैं, और अपने और औरों के लिए अशुभ के फल उत्पन्न करते हैं।

नाना वासनाओं और उनके सुखों के दासत्व में रहकर प्रत्येक मनुष्य के लिये अशुभ की ओर गति करना अवश्यम्भावी है। और इस पर जो जितनी अधिक जघन्य प्रकृति लेकर जन्मा है, उसके लिए उतना हि बढ़ चढ़कर अशुभ उत्पन्न करना भी अवश्यम्भावी है। इसी लिए ऐसे जन चाहे, किसी सम्प्रदाय के हों, और वह चाहे किसी ईश्वर और उसकी किसी रची हुई पुस्तक के विश्वास का दम भरते हों, वह जघन्यता और अशुभ की गति से पीछा नहीं छुड़ा सक्ते। वह विविध सम्बन्धों में अपना और औरों का अशुभ साधन करने के बिना नहीं रह सक्ते। इसी लिए ईश्वर और ईश्वर रचित पुस्तकों और अन्य धर्म्म मतों की पुकार के रहने पर भी विविध समाजों और सम्प्रदायों में घोर पाप छाया हुआ है, और शुभ के स्थान में अशुभ राज्य करता है। इस अवस्था से वह अपने आप नहीं निकल सक्ते, और कितनी अवस्थाओं में वह ऐसी गतियों से निकलना हि पसन्द नहीं करते—और इस अवस्था में जितने अधिक नीच और मलिन होते हैं, उतने हि शुभ और अशुभ के प्रकृत विवेक से दूर जाकर घोर अन्धकार में ग्रस्त होते हैं। उन्हें इस अन्धकार में शुभ और अशुभ का कोई बोध नहीं होता। उनके सच्चे परित्राण के लिए ऐसे देवात्मा की आवश्यक्ता होती है, कि जो उनमें से अधिकारी जनों में अपनी अति उच्च और विवेकदायिनी ज्योति पहुँचा कर उनमें प्रकृत शुभ और अशुभ विषयक बोध जाग्रत करे। और इस रीति से उनमें अशुभ की ओर से घृणा उत्पन्न कर के शुभ के लिए आकषण उत्पन्न करे। मैं अपने जीवन व्रत के ग्रहण करने के समय जैसे एक ओर अशुभ दायिनी गतियों से ऊपर था, वैसे हि शुभ का वह अमृतदायक अनुराग भी रखता था, कि जिस के द्वारा मैं अपने जीवन को औरों के शुभ के लिए और केवल शुभ के लिए व्यतीत कर सकता था—इस पूर्ण शुभानुराग के वशीभूत होकर मैंने अपने चारों ओर अशुभ के साथ संग्राम करने में अशुभ के प्रबल और विनाशकारी आकर्षण से आत्माओं के उद्धार करने में—जिस २ प्रकार का त्याग स्वीकार किया है, वह नाना प्रकार के सब त्यागों से निराला है।

फिर शिवानुराग के अनन्तर मुझ में सौन्दर्य्य का अनुराग क्या है? अर्थात् जो कुछ कुत्सित हो, उस से घृणा, और जो कुछ सुन्दर हो, उसकी ओर आकर्षण अनुभव करना। बाह्यक एक वा दूसरे प्रकार के सौन्दर्य्य के लिए कुछ न कुछ आकर्षण लाखों और करोड़ों मनुष्यों में पाया जाता है। एक २ सुन्दर गृह, सुन्दर छवि, सुन्दर मुख, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषण आदि को जैसे मैं पसन्द करता हूं, वैसे हि उन्हें और लाखों भी पसन्द करते हैं। परन्तु इस प्रकार के केवल बाह्यक सौन्दर्य्य का आकर्षण मनुष्य के लिए बहुत विपद-जनक होता

है। क्या यह सच नहीं, कि एक २ वेश्या के सुन्दर मुख की ओर आकृष्ट होकर लाखों मनुष्य नीच और दुराचारी बन जाते हैं, और एक २ स्त्री सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों के पीछे वेश्या और व्यभिचारिणी बन जाती है? क्या यह सच नहीं, कि एक २ व्यभिचारी स्त्री और पुरुष के लिए अपनी बाहर की छवि जैसी सुन्दर दिखाई देती है, वैसी सतीत्व की छवि कुछ भी सुन्दर दिखाई नहीं देती, और वह उस की ओर कुछ भी आकृष्ट नहीं होते? क्या यह सच नहीं, कि एक २ कलहवादी नर नारी को कलह और विवाद के स्थान में शांति की सुन्दर छवि कुछ आकृष्ट नहीं करती, और एक २ जन दूसरे की पवित्र शांति को भंग करके दूसरे को यूंही छेड़ और सता के हर्ष और प्रसन्नता लाभ करता है? क्या यह सच नहीं, कि एक एक जन अपने नीच स्वार्थ वा सुख के वश होकर दूसरे की जो कुछ अनुचित हानि करता है, दूसरे के सम्बन्ध में अपने पवित्र कर्त्तव्य कर्म्म को त्याग करता है, और दूसरे के उचित सुख को दुख और महादुख में बदल देता है, उसका बुरा और कुत्सित दृश्य उसके हृदय में कुछ भी घृणा उत्पन्न नहीं करता, वरन् उलटा आकर्षण का कारण बनता है? तब तुम समझ सकते हो, कि जब तक हृदय के सौन्दर्य्य के देखने के लिए उच्च बोध जाग्रत न हों—जब तक मनुष्य अपने विविध सम्बन्धों में अपनी विविध नीच गतियों के वशीभूत होकर जो २ भयानक और कुत्सित दृश्य उत्पन्न करता है, उनके देखने के लिए उसमें अन्तर दृष्टि उत्पन्न न हो—तब तक कोई मनुष्य उस सौन्दर्य्य के देखने और उस पर मोहित होने का अधिकारी नहीं बनता, कि जो पाप के स्थान में पवित्रता को, और अशुभ के स्थान में शुभ को उत्पन्न करता है। इस सौन्दर्य्य तत्व को जानकर तुम यह भी समझ सकते हो, कि मेरे भीतर शिव अथवा शुभ का अनुराग जिस सौन्दर्य्य को प्रकाशित कर सकता है, वह सौन्दर्य क्या हो सकता है। मैं जिस सौन्दर्य्य को देखता हूं, और जिस सौन्दर्य्य का अनुरागी हूं, वह सौन्दर्य्य हित जनक सौन्दर्य्य है, न कि हानि जनक। यह वह सौन्दर्य्य है, कि जिसको ऐसे लाखों जन भी जो वस्त्र और आभूषण से अपने शरीर को और सुन्दर वस्तुओं से अपने घर आदि को सुसज्जित करके अपने आपको सुसभ्य और मुहज़्ज़ब और सिविलाइज़्ड कहते हैं, नहीं देख सकते, और उसके अनुरागी नहीं होते। इसी लिए ऐसी सभ्यता और तहज़ीब के रहने पर भी संसार में इतना पाप और दुराचार, इतना झगड़ा और विवाद, और इतना अहित और अशुभ छाया हुआ है। शिव वा शुभ के प्रकृत अनुराग के बिना कोई हृदय के सौन्दर्य्य को उपलब्ध नहीं कर सकता। एक २ आत्मा जिस में शुभ और अशुभ विषयक विवेक जाग चुका है, और जो अपनी एक वा दूसरी नीच अवस्था को देख कर कातर और

दुःखी होकर अश्रुपात कर रहा है, जो अपने किसी सच्चे उपकारी के उपकार को सम्मुख लाकर धन्यवाद के भाव से भर रहा है, जो किसी उच्च आत्मा की उच्च महिमा को देखकर दीन भाव धारण कर रहा है, जो किसी नीच चिन्ता वा नीच कर्म्म से दुखी होकर उस्से निकलने के लिये सरल भाव से आन्तरिक बल के लिए प्रार्थना कर रहा है, इत्यादि; उसके इस प्रकार की आंतरिक छवि के सौन्दर्य्य को अनुभव नहीं कर सक्ता। मेरी यहां पर विशेषता है और इस आंतरिक सौन्दर्य्य को मैं केवल मनुष्य के साथ मनुष्य के सम्बन्ध में हि उपलब्ध नहीं करता किन्तु उसके विश्वगत प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में उपलब्ध करता हूं, और विश्व के प्रत्येक विभाग में स्थापित होने की आकांक्षा करता हूं। यह वह स्वर्गीय सौन्दर्य्य है, कि जिस का अनुरागी होकर कोई नीच और पापी नहीं बनता, किन्तु उस का अनुराग जिस हृदय पर जितना अधिकार करता है, उतना हि उसे सुन्दर करता है। यह वह सौन्दर्य्य है कि जिसके अनुराग सूत्र के द्वारा जो २ सम्बन्ध जहां तक स्थापन होते हैं, वहां तक वह मीठे और रसमय होते हैं। यह सौन्दर्य्य जैसे एकता प्रति पादक है, वैसे हि वह सब सम्बन्धों में सब प्रकार से शुभ जनक है। इस सौन्दर्य्य के साथ जहां तक बाह्यक सौन्दर्य्य का मेल हो, वहां तक वह भी निश्चय शुभ जनक है, और इसी लिये भोग करने के योग्य है। यही वह अपूर्व्व सौन्दर्य्य है, कि जिसका अपूर्व अनुराग मुझ में वर्तमान है। यही वह सौन्दर्य्य है, कि जिस के अनुराग की मुझ में बहुत बड़ी और निराली विशेषता है।

उपरोक्त पद के अन्त में मैंने कहा कि "जग के उपकार हि में जीवन यह जावे" अर्थात् मैंने उस दिन यह व्रत धारण किया, कि मैं अपना समस्त जीवन जग के उपकार साधन में व्यतीत करूंगा। कौनसा उपकार साधन ? कितने हि लोग भूखों को अन्न देते हैं। शीत ऋतु में वस्त्र हीनों को बस्त्र वितरण करते हैं। कोई कुएं, बावली, तालाव, सराय, चिकित्सालय, स्कूल और कालेज आदि बनाते हैं। कोई इसी प्रकार के कामों में एक वा दूसरे प्रकार से सहाय करते हैं। कोई मतप्रचार के कामों में धन दान करते हैं। ऐसे कई कार्य भी अनेक अवस्थाओं में उपकार जनक कार्य होते हैं। परन्तु जैसा मैं पहले वर्णन कर चुका हूं, इस प्रकार के किसी साधारण उपकार के कार्य के पूरा करने के लिये मैंने महाव्रत और महा त्याग ग्रहण नहीं किया। सैंकड़ों जन ऐसे कार्य्य भी किसी शुद्ध उच्च भाव के द्वारा परिचालित होकर नहीं करते, किन्तु नाम और बड़ाई आदि वासनाओं के चरितार्थ करने के लिये हि करते हैं, और वह भी अनेक बार ऐसे कार्य भी ऐसे धन के द्वारा करते हैं, कि जिस को वह पाप के द्वारा उपार्जन करते रहे हैं। ऐसे जन अनेक बार ऐसे उपकार के कार्य्य करके भी अपने आत्मा के बिचार से

कुछ उच्च फल लाभ नहीं करते, किंतु विविध प्रकार के नीच कर्मों के द्वारा दिनों दिन अधोगति प्राप्त हो कर विनाश की ओर हि जाते हैं। ऐसे जन अपने उद्धार के लिये किसी सच्चे उद्धार कर्ता की आवश्यकता रखते हैं। तब तुम समझ सकते हो, कि यदि इस प्रकार के किसी सामान्य उपकार साधन के लिये मेरा जीवन होता, तो उसकी कोई बड़ी महत्तता न होती, और उसके लिये किसी ऐसे महा व्रत और महा त्याग के ग्रहण करने की आवश्यकता भी न होती, कि जिस को मैंने ग्रहण किया। मैंने नीचगति प्राप्त आत्माओं के उद्धार और उन्हें उच्च जीवन क दान करने के निमित्त जो व्रत ग्रहण किया है, वह अद्वितीय व्रत है। उस के पूरा होने से और सब प्रकार के उपकार आप हि होने लगते हैं, और जहां तक वह उच्च भाव के द्वारा सम्पन्न होते हैं, वहां तक वह आत्माओं के लिये जीवन दायक भी होते हैं। इसी अमूल्य जीवन दान के लिये कि जिस्से श्रेष्ठ और उत्तम कोई दान और कोई उपकार नहीं, मैंने जीवन व्रत ग्रहण किया और वह भी केवल अपने देशवासियों के निमित्त नहीं, किसी एक "जाति" वा "वर्ण" के लोगों के लिये नहीं, केवल पुरुषों के लिये नहीं, किन्तु मनुष्य मात्र के लिये—छोटे बड़े, धनी, निर्धन, गोरे, काले, विद्वान, मूर्ख, पुरुष, स्त्री, सबके लिए—हां, मनुष्य के भिन्न पशु, उद्भिद आदि विश्व के सब विभागों के शुभ और कल्याण के लिए।

अब तुम मेरे जीवन व्रत की इस विशेषता को सन्मुख लाकर समझ सक्ते हो कि वह कोई साधारण व्रत नहीं, कुछ दिन का व्रत नहीं, दो चार सप्ताह वा दो चार मास वा दो चार वर्ष का व्रत नहीं, किन्तु प्रकृति के उच्च विकाश में सहाय होने के निमित्त, प्रकृति के द्वारा विकशित हो कर, जीवन भर जीवन दान करने के निमित्त एक अद्वितीय जीवन व्रत है।

६

मेरी छठी विशेषता शिक्षा विषयक विशेषता है। प्रकृति के विकाश क्रम मे मैंने जन्मकाल से जो २ विशेष और महाशक्तियां लाभ की थीं, उन के धीरे २ प्रस्फुटित और उन्नत होने पर मेरी अवस्था भी क्रमागत बदलती गई। कहां वह नाना प्रकार के कल्पित संस्कार और विश्वास, कि जो मैंने बाल्यावस्था में अपने वैष्णव माता पिता के घर और साधारण हिन्दुओं आदि में रह कर लाभ किए थे,

और कहां वह जीवन सम्बन्धी तत्वज्ञान, कि जिस की मैं तुम्हें अब शिक्षा देता हूं। मेरे अद्वितीय सत्यानुराग और मेरी तत्व प्रियता और आन्तरिक ज्योति के क्रमागत अधिक से अधिक प्रकाश ने कल्पना मूलक सब प्रकार के मतों और संस्कारों और विश्वासों को धीरे २ उनके प्रकृत रूप में दिखाना आरम्भ किया, और मैंने उन्हें कल्पना मूलक देख कर, क्रमागत त्याग करना आरम्भ किया। यह त्याग कोई सुगम त्याग न था। एक ओर मुझे अपने एक वा दूसरे दृढ़ संस्कार के साथ संग्राम करना पड़ता था, दूसरी ओर उसी प्रकार के संस्कारों में मेरे चारों ओर जो शत २ नर नारी और मेरे अन्य सम्बन्धी फंसे हुए थे, उनके साथ भी रगड़ में आकर युद्ध करना पड़ता था। परन्तु इन सब विरोधी शक्तियों के साथ महा संग्राम के अन्त में मेरे सत्यानुराग की हि जय होती थी। जय होती थी, और इस प्रत्येक जय के साथ मेरी आन्तरिक ज्योति और दृष्टि शक्ति बढ़ जाती थी। मेरा मार्ग और खुल जाता था, और मैं और आगे बढ़ जाता था। यहां तक कि इस गति में मैंने उस समय तक विश्राम न पाया, जब तक मैं धर्म्म सम्बन्धी सब प्रकार के कल्पना मूलक विश्वासों से निकल कर उस अटल आधार भूमि पर न पहुंच गया, कि जिस पर आज तक कोई जन नहीं पहुंचा था। यह अटल आधार भूमि जीवन की आधार भूमि थी। मैंने देखा कि यह जीवन सम्बन्धी सत्य और सार तत्व ज्ञान आज तक किसी पर प्रतिभात नहीं हुआ, और इसी लिए क्या वैष्णव, क्या शैव, क्या शाक्त, क्या योगी, क्या वेदान्ती, क्या सिक्ख, क्या आर्य्य समाजी, क्या ब्रह्मसमाजी, क्या संत मतावलम्बी, क्या जैनी, क्या बौद्ध, क्या थियोसोफ़िस्ट, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या मूसाई आदि सभी सम्प्रदायों के लोग धर्म्म की कोई अटल और विज्ञानमूलक आधार भूमि नहीं रखते, और नाना प्रकार की कल्पनाओं और भ्रान्ति मूलक बातों पर धर्म्म की भित्ति को स्थापन करते हैं। इस जीवन विषयक तत्व ज्ञान से करोड़ों मनुष्य वंचित हैं—पढ़े लिखे वंचित हैं, विद्वान वंचित है, मूर्ख वंचित हैं, धनी वंचित हैं, राजे, महाराजे और बादशाह वंचित हैं। यह जीवन विषयक तत्वज्ञान क्या है?

(१) क्या मनुष्य, क्या पशु और क्या उद्भिद तीनों हि जीवनी शक्ति के द्वारा जीवित रह कर, जीवन के समस्त लक्षण प्रदर्शन करते हैं।

(२) जीवनी शक्ति हि क्या मनुष्य, क्या पशु और क्या उद्भिद् के बाह्यक आकारों को अनुकूल अवस्था में संगठित और परिवर्तित ओर उन की आवश्यक रक्षा और उन्नति करती है।

(३) जीवनी शक्ति अपनी उन्नत और हीन अवस्था के भेद से कई प्रकार की

होने से, उद्भिद् में प्राण, पशु में जीव और मनुष्य में आत्मा कहलाती है।

(४) प्रत्येक जीवन्त अस्तित्व जीवन रक्षा की आकांक्षा रखता है, और इसी लिये उसके निमित्त संग्राम करता है।

(५) प्रत्येक जीवन्त अस्तित्व विकाश और विनाश के अटल नियमों के उसी प्रकार आधीन है, जिस प्रकार विश्व के और सब पदार्थ।

(६) प्रत्येक जीवन्त अस्तित्व अपने विविध सम्बन्धों में उच्च गति दायक सूत्रों से जुड़ कर उच्च जीवन अथवा विकाश लाभ करता है, और नीच गति दायक सूत्रों से जुड़ कर नीच जीवन अथवा विनाश लाभ करता है।

(७) विकाशकारी गतियों को प्राप्त हो कर एक २ अधिकारी आत्मा जैसे क्रमागत विकाश लाभ करके अमर हो सकता है, वैसे हि विनाश कारी गतियों में पड़ा रह कर एक २ आत्मा एक दिन सम्पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाता है।

(८) कोई मनुष्य विश्व के विभिन्न विभागों के साथ अपने सब प्रकार के विनाशकारी सम्बन्ध सूत्रों का ज्ञान प्राप्त होने, और उनके काटने के योग्य बनने के बिना नीच गति जनक विविध प्रकार के दुःखों और विनाश से रक्षा नहीं पा सकता, और कल्पना मूलक कोई विश्वास वा मत उसे नहीं बचा सकता।

(९) अधिकारी आत्मा को अपने जीवन की रक्षा और उसके विकाश और विकाश जनक उच्च सुखों के लाभ करने के निमित्त जैसे एक ओर जीवन तत्त्व विषयक क्रमागत **ज्योति** के पाने की आवश्यकता है, वैसे हि दूसरी ओर उच्चबोध विषयक **शक्ति** लाभ करने की भी आवश्यकता है।

(१०) किसी ऐसे **जीवन दाता** की शरण प्राप्त होने के बिना कि जिस के साथ श्रद्धा और अनुराग सूत्र में बन्ध कर कोई आत्मा जीवन दायिनी ज्योति और बोध शक्ति को लाभ कर सके, कोई आत्मा जैसे एक ओर विज्ञान मूलक सत्य धर्म्म की शिक्षा लाभ नहीं कर सकता, वैसे हि दूसरी ओर अपने जीवन का पूर्णाङ्ग विकाश और कल्याण साधन भी नहीं कर सकता।

अब तुम देखो कि जीवन विषयक इन तत्वों की शिक्षा कहां है ? इस पृथिवी में कौन सा ऐसा धर्म सम्प्रदाय है कि जो इन **तत्वों** की शिक्षा देता हो ? इस पृथिवी में जिन २ धर्म सम्प्रदायों के लोग आत्मा और परलोक पर विश्वास करते हैं, यथा मूसाई, ईसाई, मुसलमान, सनातन धर्म्मी, आर्य्य, ब्राह्मो, बौद्ध, जैनी,

सिक्स, थियोसोफ़िस्ट आदि सभी मनुष्यात्मा को अमर मानते हैं, कोई इसे ब्रह्म के साथ अभेद वा उसी का अंश बना कर और यह कह कर कि वह अनन्त काल से है, और अनन्त काल तक रहेगा, अमर मानते हैं, और कोई काल के साथ उस की उत्पत्ति बता कर और साथ हि उस के यह विश्वास रख कर कि वह आगे अनन्त काल तक रहेगा, अमर मानते हैं। जब कि सत्य यह है, कि वह प्रत्येक अवस्था में अमर नहीं हो सकता, किन्तु प्रकृति के विकाश और विनाश के अटल नियमों के अनुसार यदि विकाशकारी सम्बन्धों से जुड़ने के योग्य न हो, तो निश्चय विनष्ट हो जाता है, और उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। इसी प्रकार जीवन तत्व के प्रकृत ज्ञान के न होने से विविध सम्प्रदायों का परलोक विषयक ज्ञान भी कैसा कुछ कल्पना मूलक है—कोई कर्मवादि होकर विश्वास करते हैं, कि आत्मा अपने स्थूल शरीर को छोड़कर फिर इसी पृथिवी में कोई और स्थूल शरीर ग्रहण करता है। और वह भी यह नहीं कि मनुष्यात्मा हो कर वह फिर मनुष्य हि बनता है, किन्तु मक्खी, मच्छर, सांप, बिच्छू, गाय, बैल, घोड़ा आदि के भिन्न एक वा दूसरे प्रकार का वृक्ष भी बन जाता है। फिर कितने हि सम्प्रदाय जो इस प्रकार के पुनर्जन्म को नहीं मानते, वह आत्मा को स्थूल देह के त्याग करने के अनन्तर कबर में हि सुला देते हैं, और उस में परिवर्तन के नियम के विरुद्ध कोई परिवर्तन आने नहीं देते, किन्तु सैकड़ों और हज़ारों वर्ष के अनन्तर कयामत वा जजमेण्ट के दिन के आने पर उसे ज्यों का त्यों किसी जज्ज के सामने खड़ा कर देते हैं। फिर जीवन तत्व के ज्ञान से रहित हो कर उपरोक्त सम्प्रदायों ने मोक्ष वा मुक्ति, वा निर्वाण आदि के नाम से जो कुछ विश्वास प्रचलित किए हैं, वह भी सब कल्पना मूलक कहानियां* हैं।

इस के भिन्न जीवन तत्व विषयक ज्ञान के प्राप्त न होने पर ईश्वर वादियों ने ईश्वर और आत्मा के सम्बन्ध में एक दूसरे के विरुद्ध जो कुछ विश्वास स्थापन किए हैं वह भी कल्पना मूलक हैं। जैसे गौ वा मुर्गी को अपने बच्चे के पालन में किसी ईश्वर पर विश्वास रखने वा न रखने की आवश्यकता नहीं, जैसे हस्पताल में किसी रोगी को अच्छा करने में किसी ईश्वर पर विश्वास की आवश्यकता नहीं (क्योंकि यदि बच्चे के सम्बन्ध में पालन विषयक नियम पूरे होंगे, तो बच्चा अवश्य पलेगा, और बढ़ेगा, और रोगी के सम्बन्ध में स्वास्थ्य और चिकित्सा विषयक नियम पूरे होंगे, तो वह असाध्य न होने की अवस्था में अवश्य अच्छा होगा) वैसे हि आत्मा, विकाश अथवा विनाश

---

*मेरी 'विज्ञान मूलक मत और कल्पना मूलक मत" की उर्दू पुस्तक देखो।

सम्बन्धी नियमों के आधीन हो कर विकाश अथवा विनाश प्राप्त होगा। उस के लिए जैसे अपने शरीर के सम्बन्ध में स्वास्थ्य विज्ञान के जानने की आवश्यकता है, वैसे हि अपने आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में **जीवन विद्या** के जानने की आवश्यकता है। नहीं तो क्या यह सच नहीं है, कि हमारे चारों ओर जो लोग नीच गतियों के आधीन हो कर दिनों दिन नीच और पापी बनते जाते हैं, (जैसा कि प्रकृति के नियम के अनुसार उन के लिए ऐसा बनना अवश्यम्भावी है) उन्हें उन का ईश्वर उस गति से नहीं बचाता ? इसी प्रकार जीवन तत्व की अज्ञानता से पाप और उस के फलों के विषय में भी उपरोक्त संप्रदायों में कोई ठीक ज्ञान नहीं, इसी लिये विश्व के विभिन्न विभागों में से कई के सम्बन्ध में वह किसी प्रकार के पाप का ज्ञान नहीं रखते, और जिसके सम्बन्ध में कुछ रखते भी हैं, वह भी बहुत अपूर्ण और भ्रान्ति मूलक है। और यह अपूर्ण और भ्रान्त ज्ञान रख कर भी केवल यही नहीं, कि लाखों और करोड़ों लोग उन पापों से भी बच नहीं सक्ते, क्योंकि वह विविध प्रकार की नीच गतियों के आधीन हैं, किन्तु उन से उद्धार पाने की **आकांक्षा** तक नहीं रखते। और इसी लिए इस अंश में भी उन का यह ज्ञान उन के लिए कुछ भी कल्याणकारी प्रमाणित नहीं होता। फिर जीवन तत्व की अज्ञानता से हि लोग ईश्वर के मानने अथवा अपने विश्वास के अनुसार उस की रची हुई किसी पुस्तक की आवश्यकता का दम भरते हैं नहीं तो, इस सत्य का ज्ञान हो जाने पर कि प्रकृत धर्म्म वही है, कि जो जीवन और जीवन सम्बन्धी विश्व व्यापी नियमों की अटल आधार भूमि पर स्थापित हो, जो विज्ञान मूलक हो, न कि कल्पित, और प्रत्येक सम्प्रदाय के लिए अलग २ हो, मनुष्य को ऐसे शास्त्र की आवश्यकता है, कि जिस की कुल शिक्षा जीवन और जीवन सम्बन्धी विविध तत्वों को लेकर हो, और जिस के द्वारा जैसे एक ओर उन मूल सत्यों का ज्ञान हो, कि जिन पर यह सब शिक्षा स्थापित है, जैसे हि दूसरी ओर **मनुष्य तत्व** और **परलोक** तत्व और **विश्व** के विभिन्न विभागों के सम्बन्ध में **कर्तव्य** और **वर्जित कर्मों** आदि का भी भलीं भान्त ज्ञान हो।

परन्तु मेरी यह जीवन तत्व सम्बन्धी शिक्षा जैसी अद्वितीय शिक्षा है, वैसे हि मेरा मनुष्य जीवन विषयक आदर्श भी अद्वितीय है। यह आदर्श जीवन तत्व सम्बन्धी अटल आधार भूमि पर स्थिति करता है, अर्थात् विश्व के विभिन्न विभागों के सम्बन्ध में एक ओर मनुष्य अपनी नीच गतियों का जितना बोध लाभ करने के योग्य होता है, और दूसरी ओर जितने विविध उच्च बोध लाभ करके उच्च गति की ओर बढ़ने के योग्य बनता है, उतना हि वह विनाश से मोक्ष पा कर विकाश की सीढ़ी पर चढ़ता है; और उच्च जीवन सम्बन्धी सब प्रकार के

सुखों और शुभों का अधिकारी बनता है। यह आदर्श जैसे विज्ञान मूलक है, वैसे हि विश्व के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में एकता प्रतिपादक है, अर्थात् मेल स्थापन करता है। इस एकता प्रतिपादक आदर्श को प्राप्त हो कर मनुष्य केवल मनुष्य जगत् के सम्बन्ध में हि नाना प्रकार के प्रकृत पापों का ज्ञान लाभ नहीं करता, किन्तु पशु जगत् और उद्भिद् जगत् और भौतिक जगत् के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार के पापों का ज्ञान लाभ करता है। और इस ज्ञान के अनन्तर इन विभागों के साथ उच्च गति दायक जिन २ सम्बन्ध सूत्रों से जुड़ कर वह आप विकशित और उनके साथ एकता वा मेल स्थापन करने के योग्य होता है, उन का भी ज्ञान लाभ करता है। मानों इस अद्वितीय आदर्श के प्रकाशित होने पर उस के सामने अपने आत्मा और उस के विविध सम्बन्धियों के विकाश और विनाश का सारा भेद खुल जाता है। और वह यह भी देख लेता है, कि किसी सम्प्रदाय के मत के ग्रहण करने वा न करने से यह विज्ञान-मूलक आदर्श पूरा नहीं हो सकता, किन्तु एकता प्रतिपादक जीवन दाता की उचित रूप से **शरण** लेने और उनके साथ श्रद्धा और अनुराग के द्वारा जुड़ने और अपने अहं को छोड़ कर उन्हें अपने ऊपर अधिकार देने से पूरा हो सक्ता है। यही वह अद्वितीय आदर्श है, कि जिस में ढालने के लिये देव शास्त्र में सोलह यज्ञों का विधान किया गया है, कि जिन के साधन की योग्यता लाभ करने से मनुष्य धीरे २ विश्व के प्रत्येक विभाग के साथ अपने नीच गति दायक सम्बन्ध सूत्रों के काटने और उच्च गति दायक सम्बन्ध सूत्रों के स्थापन करने के योग्य बनता है। इस आदर्श में इस प्रकार से ढलने से सब सम्बन्धों में सब प्रकार का शुभ आता है। ईश्वर और ईश्वर रचित पुस्तकों और विविध देवी देवतों, और तीर्थों और पैग़म्बरों और महात्माओं और पुनर्जन्म और कर्म्मवाद और वेदान्त आदि फिलासफियों और अन्य कल्पित मतों के प्रचार से आज तक जो २ अशुभ और पाप नहीं गया, और नहीं जा सकता था, वह सब जाता है, और जो २ शुभ नहीं आया, और नहीं आ सक्ता था वह सब आता है। इसी लिए विश्व के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में इस एकता और परम एकता के आदर्श की आकांक्षा को सन्मुख रख कर हि हम लोग यह महा वाक्य उच्चारण करते हैं, अर्थात्

"ओं, उच्चगति: उच्चगति:
एकता, एकता, परम एकता"

अब इस संक्षिप्त वर्णन को सुन कर तुम समझ सकते हो, कि मेरी धर्म्म विषयक सब शिक्षा कि जिसका नाम **देवधर्म** की शिक्षा है, कैसी अद्वितीय, और कल्याणकारी और निराली है। और उस की इस पृथिवी के सब सम्प्रदायों की शिक्षा की तुलना में कितनी बड़ी महानता और कितनी बड़ी विशेषता है।

७

मेरी **सातवो** विशेषता **धर्म संस्थापन** विषयक विशेषता है। धर्म्म संस्थापन क्या ? अर्थात् मनुष्य आत्माओं के भीतर जीवन विषयक हित और अहित का बोध जाग्रत करके, उन्हें नीच गतियों अथवा पापों से मोक्ष और उच्च जीवन लाभ करने के लिये आकांक्षी करना, और उनके विश्वगत विविध सम्बन्धों में जहां तक सम्भव हो, अनेकता के स्थान मे एकता और अशुभ के स्थान में शुभ उत्पन्न करना, और इसी उच्च जीवन को आधार बनाकर उनके सब समाजिक सम्बन्ध और अनुष्ठान स्थापन करना, और एक ऐसी धर्म्म समाज संगठित करना कि जिसकी न्याई आज तक इस पृथिवी ने न देखी हो। इस जगत् और देश में धर्म्म के नाम से सैंकड़ों सम्प्रदाय वर्तमान हैं, परन्तु ऐसे सम्प्रदाय भुक्त लोगों की अवस्था क्या है ? उन्हें प्रकृत धर्म्म का—जीवन सम्बन्धी सत्य धर्म का—कुछ भी ज्ञान नहीं, वह विज्ञान मूलक प्रकृत धर्म्म के विचार से पूर्ण अन्धकार की अवस्था में हैं। इसी लिए जो कुछ धर्म्म नहीं है, उसी को धर्म्म समझते हैं, अर्थात्:—

(१) इस वा उस उपास्य देवता, इस वा उस गुरु, इस वा उस पुस्तक, इस वा उस पैग़म्बर, इस वा उस मोक्ष, वा परलोक विषयक कल्पित कहानी के मानने अथवा औरों के सन्मुख झूठ मूठ अंगीकार करने का नाम धर्म्म जानते हैं, और इसी प्रकार के कल्पित मत भेद को लेकर अलग अलग सम्प्रदायों और समाजों में विभक्त हो रहे हैं। ऐसा होता है कि एक जन जो आज सनातन धर्म्मी हिन्दू था, व कल आर्य्य धर्म्मी वा ईसाई वा मुसलमान आदि बन कर यद्यपि जीवन के विचार से पहले से भी बुरा और नीच बनता जाता है, परन्तु वह केवल अपने मत पर फूलता रहता है कि जो मत भी कल्पित होता है। और अपने जीवन और उसके विकाश और विनाश सम्बन्धी अटल नियमों के ज्ञान के विचार से केवल अन्धकार का जीव रहता है।

(२) किसी एक वा दूसरी पूजन विधि के पूरा करने का नाम धर्म्म समझते हैं, जैसे, गायत्री का जप और सन्ध्या और तर्पण, और सुखमनी, और जपजी का पाठ, नमाज़, दुआ, आराधना, और प्रार्थना, अथवा किसी उपास्य देवता का कोई कल्पित ध्यान आदि करना, जब कि यह सब करके भी उन का जीवन दिनों दिन अधोगति प्राप्त होता रहता है।

(३) बाह्यक एक वा दूसरे प्रकार के चिन्ह धारण वा अनुष्ठान आदि का नाम धर्म्म समझते हैं, जैसे सिर पर केश वा शिखा रखना, जनेऊ पहनना, तिलक और छाप लगाना, कंठी और माला पहनना, मुण्डन कराना, भभूत मलना, नीले पीले और गेरुए आदि वस्त्र पहनना, दंड़क मण्डलु आदि रखना, किसी के हाथ का बनाया हुआ भोजन न खाना, उपवास करना, कल्पित छूतछात से डरना, खतना कराना और विवाह न करना आदि।

(४) तीर्थों के नाम से कुरूक्षेत्र, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी, बद्रीनाथ, जगन्नाथ, सारनाथ, गया, मक्का, मदीना और जेरूसलम आदि स्थानों का भ्रमण और मूर्तियों और मन्दिरों और कबरों और समाधियों आदि का दर्शन और विविध नदियों और जलाशयों में स्नान आदि करने का नाम धर्म्म मानते हैं।

अब यह बातें धर्म नहीं हैं। धर्म्म तो आत्मा की उच्च गति मूलक अवस्था का नाम है, और वह अवस्था उस में उच्च भावों के जाग्रत होने से उत्पन्न होती है। धर्म के जीवन के क्रम २ से उत्पन्न और उन्नत होने से पाप और दुराचार का क्रम २ से नाश होता है। कुरीतियों के स्थान में सुरीतियां स्थापन होती हैं। शांति आती है, शुभ आता है। परन्तु उपरोक्त प्रकार के मतों आदि के रहने से तो पृथिवी से पापका नाश नहीं होता। विविध प्रकार केमतों और कल्पित पूजाओं और तीर्थों आदि के रहनेपर भी मनुष्य जाति से जीव बध, चोरी, ठगी, उत्कोच (रिशवत), व्यभिचार, मद, मांस सेवन, आदि नाना प्रकार के भयानक से भयानक पाप तक दूर नहीं होते। चारों ओर से पाप जनक हाहाकार की ध्वनि आती है। मनुष्य ने अपनी विविध वासनाओं और उत्तेजनाओं के आधीन होकर विश्व के विविध विभागों में महा भयानक अशान्ति और दुःख का राज्य फैला रक्खा है, मनुष्य अपने अत्याचार के द्वारा प्रतिदिन केवल लाखों और करोड़ों पशुओं का हि वध नहीं करता, किन्तु परस्पर कलह और युद्ध करके सैंकड़ों और हज़ारों मनुष्योंके प्राण भी हरण करता है। और तो और अपने निकट से निकट के सम्बन्धियों को भी नहीं छोड़ता सैंकड़ों मनुष्य अपनी अबला और असहाय कन्याओंको बध करते हैं। सैंकड़ों सगे भाई होकर एक दूसरे का खून करते है। सैंकड़ों भाई अपनी बहिनों का माल लूटते और खाते हैं। सैंकड़ों मां बाप अपनी कन्याओं को बेचते हैं, और रुपये लेकर बड़े बूढ़ों और अयोग्य पुरुषों के साथ उन का विवाह करके उनकी सारी आयु का सुख नष्ट करते हैं। हज़ारों मां बाप अपनी बाल विधवा कन्याओं को सारी आयु के लिए विवाह से वंचित रखते हैं। और पुरुष अपने लिए एक के जीते जी कई २ स्त्रियां लाते हैं। लाखों विवाहित पुरुष और स्त्री व्यभिचार करके परस्पर और अपनी सन्तान के लिए नाना प्रकार के क्लेश और दुःख उत्पन्न करते हैं। लाखों

सन्तान कृतघ्न और अबाध्य हो कर माता पिता को दुःख देती हैं। हज़ारों धनवान् निर्धनों को सताते हैं। लाखों बलवान् दुर्बलों पर विविध प्रकार का अन्याय करते हैं। लाखों जन साधू वा धर्म्म के उपदेशक कहला कर दुराचार करते हैं। हज़ारों जन निर्दोषों पर झूठे दोष लगा कर उन्हें पीड़ा पहुंचाते हैं। वस्तुतः जब एक २ परिवार में हि निकट से निकट के सम्बन्धी एक दूसरे की नाना प्रकार से अनुचित हानि और क्लेश पहुंचाने में कमी नहीं करते, तो फिर दूर के सम्बन्धियों और बिचारे पशुओं के विविध प्रकार के दुःखों आदि का क्या कहना है। यह सब महा अत्याचार और पाप उपरोक्त मतों आदि के रहने पर भी दूर नहीं हुए, और नहीं हो सके। पाप का राज्य इस वा उस मत के प्रचार से, इस वा उस प्रकार के चिन्ह धारण करने से, इस वा उस तीर्थ पर जाने से, इस वा उस बाह्यक अनुष्ठान के करने से, दूर नहीं होता और नहीं हो सकता। अधर्म्म के विनाश और उस के स्थान में धर्म्म को स्थापन करने लिए धर्म्म के हि शक्ति सम्पन्न और प्रतिभाशाली अवतार की आवश्यकता है। धर्म्म के अवतार से हि अधर्म्म का नाश और धर्म्म का संस्थापन और प्रचार सम्भव है। बिना इसके कदापि नहीं। प्रकृत धर्म्म के अवतार से हि वह उच्च ज्योति और शक्ति अधिकारी आत्माओं तक पहुंच सकती है, कि जिसके द्वारा उनका नीचजीवन परिवर्तित हो कर उच्च गति अथवा धर्म्म पथ ग्रहण कर के उच्च से उच्च बन सकता है। इसी लिये सैंकड़ों सम्प्रदायों और सैंकड़ों कल्पित मतों के रहने पर भी यह पृथिवी अपने कल्याण के लिए किसी पूर्ण धर्म्मावतार की आकांक्षा करती थी, क्योंकि किसी और कल्पित अवतार के नाम से युग २ में यहां जितने अवतार हुए हैं, उन के द्वारा यह महत् उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। यह आकांक्षा गाढ़ होती गई, और ठीक समय के आने पर वह आकांक्षा पूरी हुई। अधर्म नाश और पूर्णाङ्ग और प्रकृत और विज्ञान मूलक धर्म्म के संस्थापन के द्वारा पृथिवी में एक नया युग लाने के निमित्त, पूर्णाङ्ग धर्म्म का अवतार हुआ। प्रकृति में लाखों वर्ष के विकाश के अद्भुत कार्य्य का उद्देश्य सिद्ध हुआ। वह प्रकट हो कर प्रकृति की गोद में हि अपने सर्व्वोच्च और महा कल्याणकारी लक्ष्य के साधन के निमित्त धीरे २ प्रस्तुत होने लगा। प्रस्तुत होकर उसने अपने चारों ओर के नाना प्रकार के कल्पित मतों के भयानक पाश को काट कर उसी प्रकार शिर निकला, जिस प्रकार बहुत गहरे और काले बादलों से आच्छादित सूर्य्य अपने मुख को बाहर निकालता है। और तुम जैसे लाखों अधिकारी आत्माओं पर गहरे कुसंस्कारों और पापों की जो काली घटा छाई हुई थी, और अन्धकार ग्रस्त होने के कारण तुम्हारी जो भयानक दुरवस्था हो रही थी, उस के दूर करने के निमित्त, उस जीवन ज्योति और शक्ति के स्रोत ने उस घोर

अन्धकार के भीतर यह संगीत ध्वनि आरम्भ की

जीवनव्रत मेरा पूरन हो।
जीवनतत्व की ज्योति फैले,
जीवन रस चौदिग वितरन हो;
अधिकारी जन जीवन पावें,
जीवन की महिमा कीर्तन हो।
विश्व के सकल विभागों में हि,
उच्च मेल सव(अ)स्थापन हो;
जो कुछ शुभ हो वह विकशित हो,
जो कुछ अशुभ सभी चूरन हो।

इत्यादि २

कैसा आश्चर्य्य गीत ! क्या इस पृथिवी पर पहले कभी किसी ने ऐसा गीत गाया है ? कभी नहीं ! इस धर्म के पूर्णाङ्ग अवतार ने अपने सर्व्वोच्च लक्ष्य को सन्मुख रख कर और नाना प्रकार के महा घोर दुखों और क्लेशों को सह कर, तुम्हारे जीवन की गतियों में जो कुछ आश्चर्य्य परिवर्तन उत्पन्न किया है, और अधर्म्म का नाश कर के जहां तक धर्म्म का राज्य स्थापन किया है, वह सब कुछ तुम पर प्रकट है और पृथिवी में नाना प्रकार के कल्पित मतों आदि के प्रचार की तुलना में उसकी इस प्रकार की धर्म्म संस्थापन विषयक जो कुछ महानता और विशेषता है, वह भी तुम्हारे सन्मुख है। मैं वही धर्म्म संस्थापक हूं, और मेरी यह धर्म्म संस्थापन विषयक निश्चय एक और विशेषता है।

८

मेरी आठवीं विशेषता धर्म्म **संग्राम** विषयक विशेषता है। अर्थात् मैंने अपने जीवनव्रत के सिद्ध करने के निमित्त, जिस प्रकार का संग्राम किया है, वह सम्पूर्णतः विशेष है। धर्म्म-हीन नीच वासनाओं और उत्तेजनाओं के अधीन, नीच लक्ष्य और सुखों में अनुरक्त आत्माओं को, अपनी ओर आकृष्ट करके, उनके भीतर अधर्म्म और धर्म्म विषयक कोई बोध उत्पन्न करना, और उन्हें एक वा दूसरी नीच गतियों के महा भयानक और अति दृढ़ बन्धनों से निकालना, और जिन पापों के त्याग से उनके धन की हानि होती हो, और एक वा दूसरा सुख

जाता हो, उनसे उनका उद्धार करना, और नीच स्वार्थ से निकाल कर, उन्हें परोपकार अथवा औरों के शुभ के लिए अपने धन, मान, पद और सुखों को त्याग करने के योग्य बनाना; एक ऐसा महा कठिन कार्य्य है, कि जिसकी तुलना इस पृथिवी के किसी कठिन कार्य्य से नहीं हो सक्ती। एक २ मनुष्य वंश परम्परा से जिस प्रकार धन की वासना, मान की वासना, पद और प्रभुत्व की वासना, विविध इन्द्रिय सुखों आदि की वासना और एक वा दूसरी उत्तेजना आदि का अति प्रबल भाव लेकर उत्पन्न होता है, और जन्म काल से अपने चारों ओर उन्हीं के प्रस्फुटित और उन्नत होने की सामग्री को पाकर, उन वासनाओं और सुखों और उत्तेजनाओं का कीड़ा बन कर, उन्हीं के द्वारा परिचालित होता है, उन्हीं के वशीभूत बन कर गति करता है, उन्हीं के विषय की चिन्ता में डूबा रहता है, उन्हीं के ध्यान में मग्न रहता है, उन्हीं का जप और उन्हीं के चरितार्थ करने के लिए यत्न और परिश्रम करता है, उसे देखकर क्या यह प्रतीत नहीं होता, कि अब इस में उन के भिन्न किसी और चिन्ता, किसी और ध्यान और किसी और भाव के प्रवेश करने वा उत्पन्न होने की गुंजाइश नहीं? हां ऐसे आत्मा हैं और बहुत हैं, कि जो ऐसी अवस्था को पहुंच चुके हैं, कि जिनमें अब प्रकृत धर्म्म अथवा जीवन विषयक किसी उच्च चिन्ता और किसी उच्च भाव का उत्पन्न होना सम्भव नहीं रहा। और वह चाहे, किसी ईश्वर की कैसी हि प्रिय सन्तान कल्पना किए जावें, उन का धर्म्म-हीन रहना और इस अवस्था में धीरे २ अपनी जीवनी शक्ति को खोना और घुल २ कर और नाना प्रकार के नीच गति जनक दुःखों को भुगत कर, एक दिन पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। ऐसे आत्माओं को न उनका कल्पित ईश्वर बचा सक्ता है। न ऐसे कल्पित ईश्वर की रची हुई कोई पुस्तक बचा सक्ती है। और न कोई और कल्पित मत वा बाहर का चिन्ह वा वेश आदि बचा सक्ता है—हां ऐसे सैंकड़ों आत्मा मेरी पहुंच से भी बाहर हैं। परन्तु जो आत्मा अभी ऐसी अवस्था तक नहीं पहुंचे जिनके भीतर अभी कुछ जीवन दायिनी ज्योति और शक्ति के प्रवेश करने के लिए स्थान है, वह भी अधिकांश रूप से सांसारिकता अथवा नीच गतियों के इतने अधीन हो चुके हैं, और अहं की विनाशकारी नीचता के इतने वशीभूत हो चुके हैं, कि उनमें प्रकृत धर्म्म की अभिलाषा और ऐसे धर्म्म वा जीवनदाता के प्रति सच्ची और सात्विक श्रद्धा को उत्पन्न करना और उसके द्वारा उसके साथ जोड़कर उन्हें एक वा दूसरे उच्च बोध लाभ करने के योग्य बनाना, कोई सुगम कार्य्य नहीं है। हां, मनुष्य आत्माओं के हृदयों पर नीच वासनाओं और उत्तेजनाओं का इतना प्रबल अधिकार है, कि उन पर पूर्ण अधिकार लाभ करना तो एक ओर उन्हें

अपनी और अपने सर्व्वोच लक्ष्य की ओर आकृष्ट करना, मेरे लिए इतना अत्यन्त कठिन कार्य्य है, कि उसकी तुलना में किसी बड़े पहाड़ का काटना भी कठिन कार्य्य नहीं। और यह प्रगट है, कि जब तक किसी मनुष्य का हृदय आकृष्ट न हो, जब तक उसका उचित श्रद्धा के द्वारा मेरे साथ कोई सम्बन्ध स्थापन न हो, तब तक मेरी वह ज्योति उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकती, कि जिस में वह अपने जीवन की विनाशकारी किसी नीच गति अथवा विकाशकारी किसी उच्च गति के तत्व को देख और उपलब्ध कर सके। परंतु अहं और सांसारिकता से परिपूर्ण और मतों के मद से मतवाला मनुष्य, मेरी ओर क्योंकर आकृष्ट हो सक्ता है? और मुझे क्योंकर श्रद्धा की दृष्टि से देखकर मुझ से अपने उद्धार और कल्याण का अभिलाषी बन सक्ता है? और इस पर भी जब उसे मेरी ओर आने में अपने सम्बन्धियों और अन्य लोगों के द्वारा अपमान और दुर्नाम मिलता हो, गालियां मिलती हों, घृणा मिलती हो, विविध प्रकार का उत्पीड़न मिलता हो, तो फिर ऐसी कौनसी बात है, कि वह मेरी ओर एक पद भी उठाने की इच्छा कर सके? कोई भी नहीं। प्रगट रूप में जहां मनुष्य की ऐसी अवस्था हो, वहां मेरे जीवन व्रत के सिद्ध होने की कोई आशा नहीं हो सक्ती। परन्तु भारतवासियों की दशा अपेक्षा कृत और भी बहुत बुरी है। माया और कर्म्मवाद और वेदान्त आदि की फिलासफी के प्रचार ने उन्हें किसी काम का नहीं रक्खा। उनके उन बड़े २ वेदान्त वागीश पंडितों को देखो, कि जिन्होंने अंगरेज़ी साहित्य न पढ़ा हो, वा ऐसे साहित्य जानने वालों का संग न किया हो। उनके शहर २ और गांव २ में जो लाखों वेदान्ती और अन्य मतावलम्बी सन्यासी और साधु रहते हैं, उनकी अवस्था को देखो। और उनके मठों और मंदिरों के सैंकड़ों महन्तों और पुजारियों की अवस्था को देखो। उनके तीर्थ स्थानों में हज़ारों पंडों और यात्रियों की अवस्था को देखो। और फिर यदि तुम कुछ विचारशील मनुष्य हो, यदि तुम को प्रकृत धर्म्म तो एक ओर साधारण मनुष्यता का भी कुछ सच्चा बोध हो चुका है, तो तुम भली भान्त जान और समझ लोगे कि हमारे देश के उपरोक्त प्रचलित मतों आदि ने इस देश का कैसा नाश किया है, पुनर्जन्म के एक २ कल्पित संस्कार से किस प्रकार लोग एक २ बार बिन आई मृत्यु से मरते हैं, उसका मैं एक दृष्टान्त देता हूं। एक स्त्री कुछ दिन तक ज्वर की कठिन पीड़ा के रहने से बहुत दुर्बल हो गई थी। ऐसी अवस्था में दूध हि उसका सब से अच्छा और पुष्टिकर आहार बनसक्ता था, परन्तु उसने इसलिए दूध पीना अस्वीकार किया, कि वह यदि दूध पीने की अवस्था में मरी, तो सांप की जून में जाएगी; जिसका परिणाम यह हुआ कि वह मर गई। यदि उसमें यह मिथ्या संस्कार बैठा हुआ न

होता, तो वह अवश्य बच जाती। और इस प्रकार के मिथ्या संस्कारों के बुरे फलों का एक यही दृष्टान्त नहीं है, और सैंकड़ों हैं। खाने पीने के साथ धर्म्म के कल्पित सम्बन्ध को लगाकर भारत के हिन्दुओं ने इस मिथ्या संस्कार के द्वारा अपनी क्या कुछ दुर्दशा कर ली है। कितने प्रदेशों के वह लोग जो पढ़े लिखे भी हैं, परन्तु उपरोक्त मत के सचमुच वा कपटता से विश्वासी बने हुए हैं, अपने ऐसे हिन्दू जनों को कि जो विद्या आदि लाभ विषयक किसी शुभ अभिप्राय के लिए यूरोप तो गए हों, वहां से प्रत्यागमन करने पर अपनी बिरादरी से अलग कर देते हैं। परन्तु उन्हीं में से हज़ारों जन अपने देश में रहकर नाना प्रकार के पाप करते हैं—खाने पीने के विचार से भी अभक्ष्य खाते हैं, शराबें पीते हैं, हिन्दु होके मुसलमान वेश्याएँ रखते हैं, और कितने हि उनके साथ खाते पीते भी हैं। चोरी आदि अपराधों में पकड़े जाकर जेल अर्थात् कारागार में भी रहते हैं। परन्तु वह बिरादरी से जुदा नहीं किए जाते, क्योंकि वह अशुभ का साथ देते हैं और औरों के भिन्न अपनी बिरादरी की भी बहू, बेटियों और अन्य जनों को हानि पहुंचाते हैं। भारत के धर्म्म मतों ने और शुभ तो एक ओर इस संसार की साधारण भलाइयों के लाभ करने के लिए भी उन के भीतर कोई आकांक्षा जाग्रत नहीं की। तुम किसी गांव वा नगर में जाओ, वहां यह नहीं देखोगे, कि अंग्रेज़ी विद्या अथवा अंग्रेज़ी विद्वानों की प्रेरणा से विहीन सैंकड़ों जन स्थान २ में बैठे हुए सभाएं कर रहे हैं, और वहां पर यह सोच रहे हैं, कि हमारी निर्धनता [ग़रीबी] क्योंकर दूर हो सक्ती है। वृष्टि के न होने और दुर्भिक्ष के पड़ जाने पर हम लाखों कृषक जन जो भूखों मर जाते हैं, और नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं, उनसे क्योंकर बच सक्ते हैं। इस वा उस पुलिसमेन वा अफ़सर वा अन्य जन के अत्याचार से हम लोग क्योंकर उद्धार पा सक्ते हैं। इत्यादि २ सांसारिक भलाइयों के लिए भी उनके भीतर कोई आकांक्षा नहीं उठती। क्योंकि पुनर्जन्म के विश्वास ने उन्हें यह सिखा रक्खा है, कि यहां पर किसी को जो कुछ धन, मान सुख और दुःख आदि मिलता है, वह उसके पिछले कर्म्मों के फल से मिलता है। और वेदान्त ने यह सिखा रक्खा है, कि यह संसार असार है, माया से यह सब कुछ दिखाई देता है, नहीं तो इस जगत् का वास्तविक कोई अस्तित्व नहीं है। फिर तुम आप हि सोच सक्ते हो, कि ऐसी अवस्था में आत्मा का प्रकृत कल्याण तो एक ओर, हमारे देश के लोग संसार के साधारण कल्याण के भी आकांक्षी नहीं बन सके। हां उलटा अनेक अवस्थाओं में शुभ के विरोधी और अशुभ के अनुरागी बन गए; कि जिसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो हिन्दू लोग करोड़ों की संख्या में हो कर भी जाति (Nation) न बन सके, और दूसरी ओर

और तो और सांसारिक शुभ के विचार से भी महा भयानक और नीच अवस्था में पहुंच गए। अब पृथिवी में ऐसा कोई देश नहीं, कि जहां के रहने वाले भारत वासियों की अपेक्षा अधिक धनवान्, ऋद्धिवान् और सुखी न हों। इसके भिन्न एक फल यह हुआ, कि भारतवासी हिन्दुओं में अशुभ के साथ अनुराग अथवा अविरोध ने उनके भीतर से धीरे २ प्रकृत धर्म्म के उस बीज को भी भृष्ट वा नष्ट कर दिया, कि जो पहले उनमें वर्तमान था, और अब उनके लिए किसी शुभ को शुभ जानने पर भी उसकी ओर आकृष्ट होना, और किसी शुभ लाने वाले का उत्साह के साथ उठकर साथ देना, अत्यन्त कठिन और अनेक अवस्थाओं में असम्भव हो गया। इससे भी बढ़कर उनमें जिस और नीचता ने अपना डेरा जमाया, वह ईर्षा विषयक महा विनाशकारी नीचता है। इस भाव के वर्तमान होने से, वह एक दूसरे के किसी प्रकार के शुभ वा किसी की उन्नत वा अच्छी अवस्था को देखकर प्रसन्न नहीं हो सकते, वरन् जलने लगते हैं; और उसका साथ देना तो एक ओर, उसे हानि पहुंचाने में अपनी तृप्ति ढूंढ़ते हैं। फिर कितने हि नए सम्प्रदायों में यह नीचता यहां तक बढ़ी हुई है, कि वह उसके वश होकर यह नहीं चाहते, कि उनके भिन्न कोई और जन कोई अच्छी इंस्टीटियूशन जारी करे, उनके भिन्न कोई और जन कोई स्कूल वा कालेज आदि खोले। और इसके भिन्न वह यह भी नहीं चाहते, कि उनके सम्प्रदाय का (और हो सके तो किसी और सम्प्रदाय का) कोई जन चाहे वह कैसा हि पापी और कैसा हि नीच और हानि कारक क्यों न हो, किसी प्रकृत धर्म्मशिक्षक और जीवनदाता की शरण लेकर, पहले से भला बन जाए; वह यह दृश्य देख नहीं सकते। मत के मतवाले होकर वह अपने वा किसी और के आत्मा को नीचता और पाप से निकलने और उच्च जीवन लाभ करने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते। उनके निकट **मत हि सब कुछ है,** चाहे वह कैसा हि कल्पित हो, और चाहे उनमें से बहुतों का उस पर कोई सच्चा विश्वास भी न हो।

अब तुम इस सारे वर्णन को अपने सन्मुख लाकर देखो कि मैं भारत वासियों की इस महा भयानक अवस्था के बीच में प्रगट होकर, और फिर ऐसे जनों के महा हानि कारक प्रभावों से बचकर, और सब प्रकार के अति अनिष्टकारी और कल्पित मतों के जाल से निकलकर, जिस अवस्था को प्राप्त हुआ, जिस विज्ञान मूलक धर्म्म के तत्वों के देखने, और उनकी अद्वितीय शिक्षा के देने, और जीवन ज्योति और शक्ति के संचार करने के योग्य हुआ, वह सब क्या अत्यन्त आश्चर्य्य और विस्मय जनक, अलौकिक घटना (मोजज़ा, वा Miracle) नहीं? और उसके साथ हि तुम यह भी सोच सकते हो, कि भारत की इस महा दुर्दशा की

अवस्था में मैंने जिस जीवनव्रत को ग्रहण किया, वह क्या निराला और असाधारण व्रत नहीं ? इसके भिन्न तुम इस बात को भी कुछ अनुमान कर सक्ते हो, कि भारत की इस महा भयानक दुर्दशा की अवस्था में, मुझे अपने ऐसे असाधारण व्रत के ग्रहण करने में, जैसे एक ओर अपने देशीय जनों से किसी प्रकार की सहाय नहीं मिल सक्ती थी, वैसे हि दूसरी ओर उनकी ओर से मुझे विविध प्रकार की विरुद्धता और विविध प्रकार के उत्पीड़न का मिलना अवश्यम्भावी था। और ऐसी अवस्था में मेरा जीवन व्रत सम्बन्धी संग्राम कोई साधारण संग्राम नहीं हो सक्ता था। हां उसके लिए असाधारण और विशेष संग्राम होना आवश्यक था, और वह ऐसा हि प्रमाणित हुआ। यद्यपि पहले भी जब मैंने इस महा व्रत के ग्रहण करने की इच्छा की, तो मुझे उसकी बहुत कठिनाई प्रतीत होती थी, परन्तु फिर भी वह इतनी प्रतीत न होती थी, कि जितनी सच्ची परीक्षा के द्वारा वह असाधारण रूप से चढ़ बढ़ कर प्रमाणित हुई। मैं उस समय यह समझ सक्ता था, कि मैं जिन लोगों के उद्धार और शुभ के साधन के लिए अपना समस्त जीवन भेंट धरता हूं, सांसारिक धन, मान, पद, आदि छोड़कर अपनी युवा अवस्था की सब शक्तियों को अर्पण करता हूं; और जिनकी सन्तान के लिए प्रत्येक प्रकार के शुभ का भण्डार खोल देने के लिए, अपने सांसारिक सुखों और वैभव आदि की आहुति देता हूं, वह मेरे मित्र के स्थान में शत्रु बनकर क्यों खड़े होंगे ? मेरी सहाय और पोषकता करने के स्थान में मुझे सब प्रकार से कुचल देने और मेरे व्रत के नाश करने क आकांक्षी क्यों होंगे ? परन्तु मेरा यह सोचना वृथा था। मैंने अपने देश की जो महा नीच और शोचनीय अवस्था वर्णन की, उसमें ऐसे असाधारण व्रत को ग्रहण करके मेरे लिए अपने देशीयजनों से नाना प्रकार की विरुद्धता और उत्पीड़न लाभ करना अवश्यम्भावी था। मतों के मतवाले, ईर्षा से भरे हुए, विविध पापों के अनुरागी, अपने नीच स्वार्थ के चरितार्थ करने के लिए, और तो और अपने निकट से निकट के सम्बन्धियों पर भी अत्याचार करने वाले, मुंह से किसी कल्पित ईश्वर के और दिल से किसी सच्चे शैतान की पैरवी करने वाले, वह लाखों जन जो न तो धर्म्म और अधर्म का कोई सच्चा ज्ञान रखते हों, और न अशुभ के स्थान में शुभ की कोई आकांक्षा वा उसके लिए किसी प्रकार का प्यार रखते हों, उनके लिए भला यह क्योंकर सम्भव हो सक्ता था, कि वह मुझे शत्रु के स्थान में मित्र अथवा परम मित्र और परम बन्धु के रूप में देखें, और मेरे लिए जहां तक सम्भव हो, हानिकारक होने के स्थान में सहायकारी बनें ? नहीं हो सक्ता था, और नहीं हुआ।

इसीलिए जिस दिन मैंने नौकरी छोड़ने के लिए इस्तीफ़ा दिया, उसी दिन से

कितने हि लोगों के भीतर खलबली मच गई। उसी दिन से विरोधी मतों का प्रकाश आरम्भ हुआ। और जब उसके चार दिन के अनन्तर, मैंने अपने जन्म दिन के दिन, जीवनव्रत सम्बन्धी पबलिक अनुष्ठान सम्पन्न करना चाहा, तो उस सभा में भी अधिकांश लोगों ने विघ्न डालने के लिए प्रयत्न किया। और यदि वह अनुष्ठान कृतकार्य्यता के साथ पूरा हुआ, तो इसलिये नहीं, कि उस में विरोधी-जनोंने अपनी कृपा का प्रकाश किया था, किन्तु और उच्च शक्तियों की सहाय से पूरा हुआ था। उसी दिन से विरुद्धता की अग्नि प्रकाश रूप से भड़क उठी। नौकरी छोड़ने से पहले कितने हि जन जो मुझे बहुत ज्ञानवान और धार्मिक जान कर बहुत सन्मान की दृष्टि से देखते थे, वह सब मुझे पागल और मार्ग के भिखारी के रूप में देखकर मुझ से कट गए, और मुझे घृणा करने लगे। और मेरा यह जीवन-व्रत ग्रहण करना और अपने व्रत (मिशन) सम्बन्धी कार्य्य की घोषणा करना हज़ारों मनुष्यों के लिए इस प्रकार प्रतीत हुआ, कि जिस प्रकार किसी गांव में किसी भेड़िये वा शेर का घुस आना हानिकारक और डरावना प्रतीत होता है। और जैसे बन्दूक की आवाज़ सुनकर कौवों में कोलाहल मच जाता है, और चारों ओर से कागारौल आरम्भ हो जाती है, उसी प्रकार मेरे व्रत घोषणा के शब्दों को सुन कर चारों ओर कोलाहल मच गया। पागल है, ख़ब्ती है, मूर्ख है, देश में पहले हि बहुत भिखमंगे थे, अब एक और भिखमंगा पैदा हो गया, इत्यादि शब्दों की गूंज प्रारंभ हो गई। इधर मैंने कार्य्य आरम्भ किया, उधर विरोधियों का विरोध बढ़ने लगा। बढ़ते २ एक बहुत भयानक और धुआंधार तूफ़ान बन गया।

जिन रूपों में विरोधिता का यह अति भयंकर झड़ प्रकाशित हुआ, उन में से प्रथम श्रद्धा के स्थान में घृणा का प्रचार था। घृणा के उत्पन्न करने और फैलाने के लिए मिथ्या अभियोग (झूठे इलज़ाम) आरम्भ हुए। ऐसा कोई नीच से नीच अपराध न था, कि जिस का मैं अपराधी नहीं बनाया गया। मुझे झूठा, ठग, प्रवंचक, औरों की सम्पद को अपहरण करने वाला प्रगट किया गया। व्यभिचारी और कंजर बताया गया। जब मेरी किसी कन्या की मृत्यु हुई, तो यह प्रकाशित किया गया कि मैंने उसे मार डाला है। मुझे ख़ूनी और हत्यारा प्रसिद्ध किया गया, और वह भी ऐसा ख़ूनी नहीं कि जिस ने कोई एक खून किया हो, परन्तु कई ख़ून। देश और "जाति" के लिये मुझे नाना प्रकार से महा हानिकारक बताया गया। और ख़बर नहीं और क्या २ कुछ प्रगट किया गया। और यह सब कुछ जिह्वा के द्वारा हि नहीं, किन्तु वर्षों तक विभिन्न अख़बारों में लिखने के द्वारा, बड़े २ रास्तों पर छपे हुए किन्तु गुम नाम इशतिहारों के लगाने के द्वारा और

विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के प्रचार के द्वारा। और जिन दश पापों से विरत होने के योग्य बनने पर मेरा एक २ श्रद्धालु सब से निम्न श्रेणी की सेवकी में ग्रहण किया जाता है, मैं आप उन में से नाना प्रकार के पापों का कर्ता प्रकाशित किया गया हूं। इस प्रकार के अपवाद रटना करने और अत्यन्त घृणा के फैलाने पर भी जब कोई जन मेरी शक्ति के प्रभाव से, मेरी ओर आकृष्ट होकर आया है, तो जैसे किसी मृत देह पर गिद्ध टूट कर पड़ते हैं, वैसे हि मेरे विरोधियों ने उसे घेरना और घेर कर नाना प्रकार से बहकाना और डराना आरम्भ किया है। नाना प्रकार से उसे भगा देने की चेष्टा की है। इन भगौड़ों की आस्था को सन्मुख लाने से हंसी भी आती है, और दुःख भी होता है। एक २ जन ने यद्यपि मेरे प्रभाव के द्वारा कई प्रकार की नीचताओं से निकलने और कई प्रकार के शुभ लाभ करने का अवसर पाया है, और पहले की अपेक्षा वह कितने हि अंश भला जीव बन गया है। परन्तु ज्यों हि विरोधी जनों ने उस के कान भरने आरम्भ किए, त्यों हि उसने हितोपदेश के उस ब्राह्मण की न्याईं, कि जो जंगल में बकरी लिए जाता था, परन्तु मार्ग में जब कई ठगों ने बारी २ से प्रगट हो कर उसे यह कहा, कि यह बकरी नहीं है, कुत्ता है, तो उसने अपनी बकरी को कुत्ता समझ कर छोड़ दिया; **अपनी साक्षात् परीक्षा के विरुद्ध** उन की मिथ्या बातों पर विश्वास करके, अपने शुभ और शुभ कर्त्ता को परित्याग करके उनका साथी बन गया है। मिथ्या कल्पना का जिस देश में हज़ारों वर्ष प्रचार रहा हो, वहां अपनी साक्षात् परीक्षा और सत्य के विरुद्ध मिथ्या पर विश्वास करने के लिए प्रस्तुत हो जाना कोई अचम्भे की बात नहीं। इस प्रकार के भगौड़ों के भिन्न कुछ भगौड़े और भी हैं, कि जो एक २ समय में किसी उच्च भाव के जाग्रत होने पर मेरे पास आकर रहे, परन्तु फिर अपनी एक वा दूसरी नीच रुचि और प्रवृत्ति की सामग्री न पाकर ठहर न सके, और भाग गए। और इन में से जिन के भीतर कृतज्ञता आदि का कोई भाव यथेष्ट रूप से उत्पन्न नहीं हुआ था और उसके विरुद्ध प्रतिहिंसा का भाव प्रबल रूप से वर्तमान था, वह भाग कर और और विरोधियों के साथ मिलकर बढ़ चढ़कर कृतघ्न और शत्रु बन गए। ऐसे लोगों को सामने रखकर और आड़ बना कर विरोधी जनों ने मुझे और भी महा भयानक क्लेश और हानि पहुंचाने का अवसर पाया। एक २ बड़ी २ सभा में सैंकड़ों मनुष्यों ने एकत्र होकर मेरे विरुद्ध तालियां बजाईं। जिन्होंने मुझ से नाना प्रकार का हित लाभ किया था, उन्होंने कृतघ्न और प्रति हिंसा के वशीभूत होकर ऐसी सभा में भाग लिया। इन सैंकड़ों जनों ने यह प्रार्थनाएं की, कि मैं शीघ्र मरूं और मेरी स्त्री शीघ्र विधवा हो और मेरे बच्चे शीघ्र पितृहीन हों। उनकी इस अच्छी प्रार्थना का तो

मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सक्ता था और न ही पड़ा; परन्तु उनकी इस महा भयानक नीच अवस्था से मेरे हृदय पर जिस २ प्रकार का आघात लगा है, मुझे जिस २ प्रकार का महा भयानक क्लेश पहुंचा है, उसका वर्णन नहीं हो सक्ता। इन महा निदारुण आघातों से, मुझ पर जिस २ भयानक रोग ने आक्रमण किया है, महीनों तक ऐसे किसी रोग से मेरे शरीर की जो कुछ दुःखदाई अवस्था रही है, उसका केवल उन्हीं को कुछ पता है, कि जो ऐसे समय में मेरे पास थे। और इन सब आघातों और महा क्लेशों से बड़े २ रोगों के भिन्न मेरा शरीर सदा के लिए जिस स्वास्थहीन अवस्था को प्राप्त हो गया है, उसका तुम में से भी बहुतों को पता है। परन्तु यह सब कुछ भी काफ़ी न था। मैं अपने स्थान में प्रचार अथवा वार्षिक उत्सव आदि सम्बन्धी जो सभाएं करता था, उन में यह लोग आ कर जिस प्रकार की लीला करते थे, उस्से एक २ बार ऐसा प्रतीत होता था, कि यह लोग अपनी नीचता के प्राबल्य से उस समय किसी गवर्नमेंट की भी परवा नहीं करते। बेंचों और लैम्पों का तोड़ना, एक २ समय किसी वस्तु को आग लगा देना, आश्रम में ईंटों और रोड़ों की वर्षा करना, चिल्ला २ कर अश्लील गालियां देना, फक्कड़ बकना, उनकाएक साधारण काम था। मेरे साथियों को राह में छेड़ना, उन पर मट्टी और ढेले फेंकना, घूंसे मारना, किसी का लाठी से सिर फोड़ देना, उनके हाथ से प्रचार सम्बन्धी पुस्तकें छीन कर फाड़ देना, इत्यादि कामों के द्वारा हमें सता कर वह बहुत प्रसन्नता लाभ करते थे। मेरे मार डालने के लिए अख़बार में लिख कर धमकियां देते थे। छपे हुए विज्ञापनों में ऐसी कामना प्रकाश करते थे, कि कोई राक्षस आकर इस का गला घोंट दे। वर्षों तक इस प्रकार के सलूक के अनन्तर जब उन्हों ने अपना उद्देश्य पूर्ण होता हुआ न देखा, तो कुछ जनों की ओर से एक और प्रकार का उत्पीड़न आरम्भ किया गया। अर्थात धर्म्म जीवन पत्र के एक दो लेखों को लेकर "लायबल" के मुक़दम्मे खड़े किए गए। इन मुक़दमों की पैरवी के लिए जहां किसी स्थान में मेरे लिए किसी वकील का हासल करना मुशकिल कर दिया गया, वहां दूसरी ओर बिना मिहनताना लेने के बहुत से वकील मेरे विपक्षी के साथी बन गए। यह वह समय था, जबकि हम लोग कुछ गिनती के ऐसे असहाय जन एक ओर थे, कि जो न कोई बहुत धन रखते थे, न कोई बंधु वा मित्र रखते थे, न अदालतों का कोई तजरबा रखते थे, और उधर जो धनी थे, बड़े २ सर्कारी अफ़सरों के मित्र थे, आप वकील होने के कारण क़ानून और अदालतों की उत्तम रूप से अभिज्ञता रखते थे, वह दूसरी ओर थे। हमें अपने साथियों से बाहर एक जन ऐसा नहीं मिलता था, कि जो हमारे पक्ष के समर्थन के लिए कोई बड़ी सहाय तो एक ओर, कोई सच्ची गवाही

तक देसके। यहां तक कि एक २ समय में जिन्होंने हम से नाना प्रकार का हित लाभ किया था, वह भी हमारे पक्ष में कोई सच्ची साक्षी तक देना नहीं चाहते थे। और हम लोग सब प्रकार से अति असहाय अवस्था में पहुंचाए गए थे। ईश्वर के पुजारियों और सत्यमेव जयते कहने वालों की कमी न थी, परन्तु उन में से कोई सत्य का साथ देने के लिये प्रस्तुत न था। हां उलटा हमारे विपक्षियों की सहाय करने के लिये कितनों का हृदय उछलता था। और हमारा विपक्षी खुली अदालत में यह कहता था, कि इन के मिशन का नाश करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। वर्षों तक यह क़ानूनी उत्पीड़न रहा और वर्षों तक हमें उसके द्वारा जहां तक सताया जा सक्ता था, जहां तक हमें और हमारे कार्य्य को हानि पहुंचाई जा सक्ती थी, वहां तक उसके लिए यत्न किया गया। इन दिनों में हमें ईश्वर और उसके पुजारियों की जितनी परीक्षा हुई, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। हमारी इस असहाय अवस्था में हमारे विरोधियों के लिए यह विश्वास करना स्वाभाविक था कि अब इनके "मिशन" की इतिश्री हो गई। और चारों ओर यही सम्वाद विदित भी किया जाता था। और हज़ारों जन इस समाचार को सुन कर बहुत हर्ष प्रकाश करते थे। परन्तु इस महा कठिन संग्राम में यद्यपि मेरा शरीर चूर २ हो गया, सदा के लिए रोगी हो गया, धन सम्बन्धी भी बहुत हानि पहुंची, प्रेस भी बन्द हो गया, काम काज में भी बहुत विघ्न रहा, परन्तु अन्त में अधर्म्म पर धर्म्म की हि जय हुई। और यह वचन सत्य प्रमाणित हुआ, कि "यतो धर्म्म स्ततो जयः" अर्थात् जिधर धर्म्म हो, उधर की हि जय होती है।

यहां पर यह प्रश्न उदय हो सक्ता है, कि मेरे यह विरोधी और उत्पीड़न कारी कौन जन थे? इस के उत्तर में मैं बता सक्ता हूं, कि अधिकांशरूप से यह वही जन थे, जो एक ईश्वर के विश्वासी और पुजारी कहलाते हैं। अधिकतर यही वह लोग थे, कि जो अपने लिए धर्म्म प्रचार विषयक सब प्रकार की स्वतंत्रता रखना चाहते थे, परन्तु मेरी धर्म्म विषयक उचित स्वतन्त्रता को मिटा देने के लिए यत्न करते थे। यही वह लोग थे, कि जो उपरोक्त सब प्रकार का उत्पीड़न करके अपने ईश्वर की इच्छा पूरी करते थे। इसके सम्बन्ध में एक घटना सुन्ने और स्मरण रखने के योग्य है। और वह यह है, कि कितने हि वर्षों तक, मैंने इनका अत्याचार सहने के अनन्तर एक बार सुयोग पाकर जब इन के समाचार पत्रों के दो एडीटरों पर (कि जिनमें से एक ने मुझे और मेरे मिशन को हानि पहुंचाने के लिए गिन २ कर बहुत अश्लील शब्दों में मुझ पर नाना प्रकार के झूठे अभियोग (इलज़ाम) लिख कर छापे थे और दूसरे ने यह कह कर कि हां यह अभियोग बिलकुल ठीक हैं, अपने समाचार पत्र के द्वारा उनकी पोषकता की थी)

अदालत में नालिश की, तो इन लोगों ने बड़े २वकीलों के परामर्श के अनन्तर यह जानने पर, कि इस अदालत में इन झूठे इलजामों को किसी प्रकार भी सच्चा प्रमाणित नहीं कर सक्ते, और यद्यपि वह वर्षों तक ऐसी करतूतें करके अपने एक ईश्वर को अवश्य प्रसन्न करते रहे हैं, परन्तु अदालत के प्रभु को प्रसन्न नहीं कर सक्ते, वह अवश्य उन्हें उचित दंड देगा, मेरे पास यह संदेशा भेजा, कि वह मुझसे माफ़ी मांगने के लिए प्रस्तुत हैं। और जब उन से यह पूछा गया कि क्या तुम अपने इलजामों का झूठा होना स्वीकार करते हो, तो उन्होंने कहा, हां। इस पर उन्हें कहा गया, कि अच्छा अब तुम अपने २ और अपने भिन्न चार पांच और अंगरेज़ी और उर्दू समाचार पत्रों में यह प्रकाशित करो, कि हमने इन के सम्बन्ध में यह जितने मन घड़त और झूठे अभियोग छापे हैं, उनके लिए बहुत लज्जित हैं, और आगे फिर इनके सम्बन्ध में और झूठे अभियोग नहीं छापेंगे। यह बात उन्हों ने स्वीकार की और अपने और(अन्य)कितने हि समाचार पत्रों में इस प्रकार छपवा भी दिया। अब देखो कि एकमात्र पूजा के योग्य और सर्व्व शक्तिमान ईश्वर और विचारालय के न्यायाधीश और अल्प शक्तिमान प्रभु में, कितना अन्तर है। वर्षों तक वह जिस सर्व शक्तिमान ईश्वर की पवित्र इच्छा पूर्ण करने के लिए, हमारे विरुद्ध नाना प्रकार के अभियोग सत्य कहकर प्रचार करते रहे; उन्हीं को एक अल्प शक्तिमान विचारपति के दंड से डरकर झूठा कहने लगे। और यदि यह कहा जावे, कि वह पहले भी अपनी इन करतूतों को ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध और पाप जानते थे, तो फिर जिस ईश्वर की वह एक सामान्य आज्ञा का भी पालन नहीं कर सके, उसकी और उसकी पूजा की महिमा औरों के सामने वर्णन करना क्या बहुत बड़ी धृष्टता नहीं ? परन्तु जैसा मैंने कहा है, मेरे उत्पीड़न कर्त्ता अधिकांश रूप से यही ईश्वर के विश्वासी और पुजारी रहे हैं। और इन्हीं लोगों के हाथ से मुझे वह सब महा दुःख और क्लेश मिले हैं, कि जिन का मैंने संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है।

परन्तु मेरा यह संग्राम इन्हीं के उत्पीड़न और दुःखों के साथ शेष नहीं हो जाता। इनके भिन्न जो लोग मेरी ओर आकृष्ट होकर आए हैं, और जिनके भीतर उच्च भावों को जाग्रत करके विविध प्रकार के पापों अथवा नीच गतियों के बोध कराने और उच्च जीवन उत्पन्न और उन्नत करने का भार मेरे सिर पर रहा है, उनकी इस धर्म विषयक पालना में भी मुझे बहुत दुःखदाई संग्राम करना पड़ा है। ऐसे लोगों से यद्यपि बहुत मोटे मोटे पाप अवश्य छूट जाते रहे हैं, परन्तु और नाना प्रकार के कितने हि पापों का बोध न होने तक, वह मुझे अपनी एक २ नीच क्रिया के द्वारा बहुत दुःख और क्लेश पहुंचाते रहे हैं। कर्तव्य कर्म विषयक

विविध प्रकार की त्रुटियों और स्वार्थ और अहं आदि विषयक विविध प्रकार की नीच गतियों के द्वारा उन्होंने लगातार वर्षों तक मुझे जिस २ प्रकार की पीड़ा पहुंचाई है, जिस २ प्रकार की यंत्रणा दी है, उसको मैं हि जानता हूं। ऐसे एक २ सेवक और उसके भिन्न एक २ पारिवारिक सम्बन्धी ने अपनी एक वा दूसरी नीच क्रिया से अनेक वार मुझे इतना क्लेश पहुंचाया है कि उससे मैं मछली की न्याईं तड़पता रहा हूं। और कितने हि बार यह यंत्रणा इतनी असह्य हो गई है, कि मैंने उस समय यह चाहा है कि यदि मेरा यह शरीर छूट जावे, तो अच्छा हो। इस दीर्घ काल में मुझे इस अधोगति प्राप्त भारत भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं मिला, कि जिसको मैं सदा के लिए अपना मित्र और बन्धु अनुभव कर सकूं। जिस पर पूर्ण विश्वास कर सकूं और सदा के लिये उसे अपना शुभाकांक्षी जान सकूं। तब तुम सोच सकते हो, कि मेरा यह संग्राम कितना असाधारण संग्राम रहा है। मैंने इस महाघोर संग्राम में पड़कर एक २ समय में अपने आप को जहां चारों ओर से सताने और दुख देने वालों से घिरा हुआ पाया है, वहां लाखों मनुष्यों से भरी हुई इस भूमि में एक जन भी ऐसा नहीं देखा, कि जिसके सन्मुख मैं अपना भली भान्त हृदय तक खोल सकूं; और अपने लिए यथेष्ट सहानुभूति लाभ कर सकूं। मेरी प्रकृति तक पहुंच कर मेरी अवस्था को उपलब्ध करने वाला कोई न था। और इसी लिये जैसे मेरा जीवन विशेष था, वैसे हि उसका यह महा संग्राम भी विशेष था।

क्या यह सच नहीं, कि तुम में से जो जन पहले शराबी थे, व्यभिचारी थे, मांसाहारी थे, चोरियां करते थे, रिशवत लेते थे, जुआ खेलते थे, पशु मारते थे और जिन के घरों में कोई कन्या जीने नहीं पाती थी; ऐसे सब जनों के जीवन में मेरे सम्बन्ध के द्वारा उच्च परिवर्त्तन के आने से यह सब पाप और महा पाप दूर हो गए हैं, तुम्हारी गति बदल गई है, तुम्हारे नीच सम्बन्ध बदल गए हैं, तुम्हारे घरों का नया रूप हो गया है? जहां पहले शराब की भट्ठियां चढ़ी रहती थीं, वहां अब धर्म्म के साधन होते हैं। जिन स्थानों में पहले धर्म्म साधनों के लिए कोई स्थान न था, वहां अब आश्रम बने हुए हैं। जिन घरों की स्त्रियां और लड़कियां मूर्खता की पुतलियां बनी हुई थीं वह अब धर्म्म सम्बन्धी विविध पुस्तकें पढ़ती हैं। जो पुरुष और स्त्री नाना प्रकार के हानिकारक कुसंस्कारों में फंसे हुए थे, वह अब उन से उद्धार पा गए हैं। जगह २ सेवकों के लड़के लड़कियों के लिये स्कूल खुल गए हैं। समाज में ऐसी स्त्रियां बहुत थोड़ी मिलेंगी, कि जो कुछ लिखना पढ़ना न जानती हों। जिन घरों से पहले विवाद और कलह की हाय २ उठती रहती थी, वहां से अब उच्च भाव उत्पादक संगीतों की ध्वनि निकलती

है। जो घर नरक की सदृश पाप और दुःखों का स्थान बने हुए थे, वहां से धर्म्म और सद्भावों की महक आ रही है। जो पहले नीच स्वार्थ के वश होकर किसी का कोई भला नहीं करना चाहते थे, यहां तक कि अपने पारिवारिक सम्बन्धियों का भी कभी कोई शुभ नहीं सोच सकते थे, वह अब औरों की सेवा और सुश्रूषा करते हैं। जो पहले निकम्मे पड़े रहते थे, और कुछ काम नहीं करते थे, वह परिश्रमी बनकर विविध प्रकार के भले काम करते हैं। यह सब कुछ फल क्योंकर उत्पन्न होते यदि मैं इस महा संग्राम में न पड़ता और उसमें पड़कर वर्षों तक नाना प्रकार के उत्पीड़न और नीचता जनक दुःखों और क्लेशों, शारीरिक रोगों और अन्यान्य हानियों को अपने ऊपर न लेता ? और अब तुम अपने जीवनों के परिवर्त्तन में, मेरी जिस उद्धार और मङ्गलकारी शक्ति का कार्य्य देख कर विस्मित होते हो, उस का यह सब आश्चर्य्यजनक कार्य्य न होता। क्या यह सच नहीं कि तुम्हारे जीवनों में मेरी धर्म सम्बन्धी ज्योति और शक्ति के द्वारा जो शुभ परिवर्त्तन हुआ है, वह मेरे साथ जुड़ने से पहले तुम्हारे भीतर कोई उत्पन्न नहीं कर सका ? तुम्हारे मां बाप आदि सम्बन्धी नहीं कर सके, बिरादरी और सम्प्रदाय के लोग नहीं कर सके—कोई धर्म ग्रंथ नहीं कर सका, कोई बड़े से बड़ा कल्पित उपास्य देवता भी नहीं कर सका, हां और कोई भी नहीं कर सका ? फिर इस सत्य को सन्मुख रखकर, तुम भली भांत समझ सकते हो, कि मेरा यह महासंग्राम निष्फल नहीं गया, किन्तु उसके द्वारा वह महत् और शुभ फल उत्पन्न हुए हैं, कि जिन्हें देख २ कर मैं और तुम आज के इस महाव्रत के शुभ अवसर पर एकत्र होकर, धन्य २ हो रहे हैं। इसी लिये जहां एक ओर मेरा यह महासंग्राम निराला है, वहां दूसरी ओर उसके द्वारा मैंने जो जय लाभ की है वह भी निराली है। इस महा संग्राम में निश्चय सत्य और शुभ की जय हुई है। मेरा कष्ट सहना सैंकड़ों के लिये हित का मार्ग खोल देने का हेतु हुआ है। सैंकड़ों के भीतर श्रद्धा का सात्विक अंकुर उत्पन्न हुआ है। कितनों में कुछ न कुछ धर्म अनुराग जागा है। कितने हि जन मेरे जीवन व्रत के लक्ष्य में कुछ न कुछ, हां कई एक बहुत कुछ, सहायकारी हो रहे हैं। और इस सब के द्वारा अब तक जो कुछ हित और कल्याण आया है, और आगामी काल में आएगा, वह अनुमान से बाहर है।

तब तुम आज के इस आनन्दकारी और शुभ अवसर पर एकत्र होकर उस दिन की महानता को सन्मुख लाओ, कि जो दिन न केवल मेरा जन्म दिन है, किंतु मेरे महाव्रत ग्रहण करने का भी शुभ दिन है। जहां तुम महाव्रत के इस दिन की महिमा को अपने सम्मुख लाओ, वहां मैंने अपने जीवन की बहुत सी बड़ी विशेषताओं में से जिन आठ विशेषताओं का बर्णन किया है, उन्हें भी वारंवार

अपने हृदयों के सम्मुख लाओ। और विचार करो कि यदि मेरे जीवन में यह और ऐसी हि कितनी और विशेषतायें न होतीं, तो यह महा व्रत पूरा नहीं हो सकता था। और मेरे जीवन से वह फल उत्पन्न नहीं हो सकते थे, जो अब तक हुए हैं, और आगे होंगे। ऐसा हो कि यह विशेषतायें अपने प्रकृत रूप में तुम्हारे सन्मुख आएं, और तुममें से जिन २ के हृदय उन की ओर आकृष्ट होकर मेरे प्रति सात्विक श्रद्धा और अनुराग आदि भावों में उन्नत हो सकते हों, उनके हृदय उन्नत हों, और दिनोंदिन अधिक से अधिक उन्नत हों। और तुम्हारे जीवन के द्वारा जो उच्च फल उत्पन्न हो सकते हों, वह फल उत्पन्न हों, और दिनों दिन अधिक से अधिक उत्पन्न हों। मैं ऐसा आशीर्वाद तुम सब को प्रदान करता हूं।

श्रीदेवगुरु भगवान् की कुछ और बड़ी २ विशेषतायें

१. निम्न कोषों पर धर्म्मशक्तियों का पूर्ण अधिकार

श्रीदेवगुरु भगवान् अपनी किसी वासना वा उत्तेजना आदि के अधीन नहीं। वह उन सब से ऊपर हैं। वह उन सब के अधिपति हैं। वह अपने निम्न कोषों के आप प्रभु हैं। वह बिना ऐसी अवस्था में पहुंचने के उस अद्वितीय पद को लाभ नहीं कर सक्ते थे, जो प्रकृति ने उनके लिये रक्खा था। वह प्रत्येक वासना और उत्तेजना आदि पर अधिकार लाभ करने के बिना **अपने मुख्य लक्ष्य को प्रत्येक गौणलक्ष्य की तुलना में मुख्य नहीं रख सक्ते थे,** और उसके लिए सदा **सच्चे** रह-कर जैसे एक ओर स्थिर होकर, विकाश की सीढ़ी पर उत्तरोत्तर **नहीं** चढ़ सक्ते थे। उसी प्रकार नाना प्रकार के असह्य उत्पीड़न और दुःख और नाना प्रकार की बड़ी २ कठिनाइयां और हानियां **नहीं** उठा सक्ते थे।

संसार में एक २ विषयी मनुष्य भी जब धन वा मान आदि को और सब बातों से ऊपर स्थान देने के योग्य बन जाता है, और उनका अनुराग उसकी अन्य प्रत्येक वासना वा उत्तेजना पर अधिकार लाभ करता है, तभी वह उनकी प्राप्ति के लिए और सब प्रकार की हानियां और सब प्रकार के क्लेश उठा सक्ता है। लार्ड राबर्ट (भारत के भूत पूर्व्व कमान्डरन चीफ़) के एक हि बेटा था, वह जवान था, फ़ौज का अफ़सर था। वह बूअर लोगों के साथ अफ़्रीका की लड़ाई में मारा गया। लार्ड रावर्ट के लिए कितना बड़ा आघात! कितनी दुखदाई और हृदय विदारक घटना!! परन्तु इधर उनकी यह अवस्था! उधर उन्हें उसी समय उसी लड़ाई में जाने और उसके परिचालन करने का भार दिया गया है। फल? वह सारी उमर जिस इज्ज़त (Honor) की प्राप्ति का साधन करते रहे, जिसका अनुराग उनके भीतर और सब अनुरागों से बढ़कर था, उसी की प्रबलशक्ति के अधीन होने के कारण वह (यद्यपि इकतालीस वर्ष तक नौकरी करके और इस देश के सब से उच्च जंगी पद पर पहुंचकर पेन्शन ले चुके थे, और बहुत कुछ बूढ़े भी हो चुके थे) फिर भी उसी युद्ध में

लड़ने के लिए चले गए, और कोई ख्वाहिश वा चीज उनकी इस गति में प्रतिबन्धक न हुई ।

श्रीमहामान्य जी ने नौकरी छोड़कर जब अपना जीवनव्रत ग्रहण किया था, तभी वह अपनी प्रत्येक वासना और उत्तेजना आदि पर पूर्ण अधिकार लाभ करके अपने मुख्य लक्ष्य को प्रत्येक गौण लक्ष्य पर मुख्य रखने की योग्यता अर्थात् सिद्धि लाभ कर चुके थे । इसीलिए आज प्रायः इक्कीस वर्ष तक वह उसके लिए सब प्रकार के आवश्यक त्याग करने, महा क्लेश और दुःख सहने और अपने अतुल संग्राम के द्वारा सैकड़ों आत्माओं का विविध प्रकार से उद्धार और कल्याण साधन करने के योग्य हुए हैं ।

२· असाधारण ज्ञान कोष ।

प्रकृत-धर्म्मजीवन विषयक सत्यज्ञान के विचार से इस पृथिवी में बड़े २ विद्वानों और वैज्ञानिक जनों की जो अवस्था है, बड़े २ दिमाग रखनेवाले जिस प्रकार अन्धकार में ठोकरें खाते फिरते हैं, बड़े २ पुराने धर्म सम्प्रदायों के संस्थापक जिस प्रकार अन्धकार की अवस्था में रहे हैं, आज तक भी उन सब सम्प्रदायों के लोग जिस प्रकार कल्पना-मूलक मतों के महा भयानक और हानिकारक जाल में फंसे हुए हैं, उन सब की अवस्थाओं को सम्मुख लाओ, और फिर विचार करना आरम्भ करो, और देखो, कि श्रीदेवगुरु भगवान की धर्मशिक्षा की महानता तुम्हारे सन्मुख आती है ? क्या वैज्ञानिक धर्म्म के मूलसत्य और जीवन के विनाश और विकाश सम्बन्धी नाना प्रकार के अतिगूढ़ और अतिसूक्ष्म तत्व, परलोक सम्बन्धी अमूल्य सत्य, नाना यज्ञ विषयक महा हितकर साधन किसी साधारण दिमाग के मनुष्य पर प्रगट हो सकते थे ? कदापि नहीं, कदापि नहीं । श्रीदेवगुरु भगवान अपनी उमर के बढ़ने के साथ २ जिन कल्पना मूलक विश्वासों से निकले हैं, और वैज्ञानिक-धर्म्म विषयक अति हितकर, महान और अद्वितीय ज्योति के लाभ करने के योग्य हुए हैं, उसमें जहां एक ओर उनके प्रशस्त और सर्व्वाङ्ग धर्म्मभावों से विकशित हृदय ने भाग लिया है, वहां दूसरी ओर उनके असाधारण शक्तिसम्पन्न मस्तिष्क ने भी भाग लिया है । उनके इस मस्तिष्क और ललाट की गठन भी साधारण नहीं । वह जीवन सम्बन्धी एक २ सत्य वा तत्व को जिस सफ़ाई और उमदगी से किसी के सन्मुख लाते हैं, जिस प्रकार के दृष्टान्तों और जिस प्रकार की परिष्कार और सरल भाषा के द्वारा उसे उपलब्ध कराने की योग्यता रखते हैं, वह अद्वितीय है । वह जैसे उपमा रहित है, वैसे हि उनके बुद्धि वा ज्ञान कोष की बहुत बड़ी विशेषता का सच्चा और जीवन्त प्रमाण है ।

३ हृदय की निर्म्मलता और तत्व दर्शिता ।

पञ्जाब प्रदेश में राबलपिंडी के ज़िले में पानी के ऐसे वहुत से झरने (चश्मे) हैं कि जिनकी कई २ फुट नीचे की तली में जो जो चीज़ पड़ी हुई हो, वह ऊपर से साफ़ दिखाई देती है । क्या कारण ? कारण जल की स्वच्छता वा निर्म्मलता । श्री देवगुरु भगवान् के आत्मा में जिस सूक्ष्मदर्शिता की अद्भुत और विचित्र शक्ति विराजमान है, वह उन्नत होकर इसी हृदय की निर्म्मलता के कारण धर्म्मजीवन सम्बन्धी उन सब गूढ़ और अति सूक्ष्म तत्वों को अधिक से अधिक देखने के योग्य हुई है, कि जो आज तक पृथिवी के किसी पुरुष ने किसी देश और किसी काल में नहीं देखे थे । पृथिवी के किसी देश में आज तक कोई सम्प्रदाय संस्थापक ऐसा नहीं हुआ, कि जिसमें सत्यप्रियता का वह अद्वितीय भाव आया हो, कि जिसकी वर्तमानता से वह सदा सत्य का पक्षपाती रहा हो, और जिस ने अपनी शिक्षा में जान बूझकर किसी मिथ्या को प्रश्रव न दिया हो । इस प्रकार की मिथ्या के भिन्न बहुत से धर्म्म प्रवर्तकों के जीवन कितने हि उन मोटे २ पापों से भी खाली नहीं पाए जाते, कि जिनसे देवसमाज के निम्न श्रेणी के सेवक भी विरत पाए जाते हैं । फिर उनके हृदय में वह पवित्रता वा निर्मलता क्योंकर आ सकती थी, कि जिस की श्रीदेवगुरु भगवान के जीवन में विशेषता है, और जो उनकी साधारण तत्वदर्शिता की शक्ति के काम में आने के लिये आवश्यक थी ? नहीं आ सकती थी, इसीलिए उस काल में नहीं आई ।

४. असाधारण ग्रहण और त्याग शक्ति

श्री देवगुरु भगवान के भीतर जिस पूर्ण धर्म्म का विकाश हुआ है, उस विकाश में उनके आत्मा की ग्रहण और त्याग शक्ति ने बहुत बड़ा काम किया है । जिस प्रकार ब्लाटिंग-पेपर में चूसने की योग्यता होती है, और वह तरल वस्तु को चूसकर अपने भीतर ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार श्री देवगुरु जी के भीतर उनकी अद्भुत ग्रहण शक्ति ने उच्चजीवन के चूसने और विकशित करने में आश्चर्य्य रूप से काम किया है । जिस प्रकार मधुमक्खी किसी फूल में से शहद को चूस लेती है, उसी प्रकार श्री देवगुरु भगवान् को जिस २ प्रकार के लोगों के साथ रहने वा उनसे मिलने, पशु जगत् के विविध जीवों, उद्भिद् जगत् के विविध वृक्षों और पौदों, लताओं और पुष्पों और पर्व्वत, खड्ड, नदी, समुद्र, सूर्य्य और चन्द्र आदि प्राकृतिक दृश्यों के देखने और उनके सम्पर्क में आने और विविध

प्रकार के ... ार ...खों के पढ़ने आदि ...
विकाश ... ग्रहण शक्ति ने उञ्च जीवन की
त्यागिनी ...ात ने नीचता को परित्याग किया है।

श्री वगुरु भगवान् के आत्मा में जैसे विकाशआकांक्षी ग्रहणशक्ति का अद्वितीय रूप में प्रकाश हुआ है, और वह जीवन के प्रत्येक अंग और प्रत्येक संबंध में अपनी खुराक ढूंढती रहती है, वैसे हि प्रत्येक सम्बन्ध में जो कुछ नीच गति दायक है, उसके लिये भी अद्वितीय घृणा पाई जाती है। वह जैसे अपने चारों ओर के हर एक सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार की छोटी से छोटी क्रिया में भी नीचता के देखने की शक्ति रखते हैं, वैसे हि किसी ऐसी नीचता को जिस गहरी घृणा के साथ अनुभव करते हैं, वह भी अपनी बहुत बड़ी विशेषता रखती है। उनके समीप रहने वाले उनकी इस घृणा सम्बन्धी विशेषता को बहुत कुछ देखने और उसके फल चखने का मौका पाते रहते हैं। श्री देवगुरु भगवान् के सम्बन्ध में जब किसी जन ने किसी विषय में बार २ अपनी नीचता और दुष्टता प्रकाश की है, तो अनेक बार उन्होंने झुंझलाकर और चित्त के गहरे उद्वेग के साथ यह कहा है, कि तुम अपनी इस लगातार नीचता से मुझे नीच नहीं बना सकते, मैं तुम्हारे साथ रहकर भी तुम्हारी बुरी रंगत ग्रहण नहीं कर सकता। तुमको या तो खुद मेरी भली रंगत ग्रहन करनी पड़ेगी और या बुराई के अनुरागी रहकर और मुझे क्लेश देके और खुद क्लेश पाके एक दिन मेरे पास से भाग जाना पड़ेगा।

□□□

Library IIAS, Shimla
H 294.572 D 49 M
00103986